नेता, टिकट और गिरगिट
सुमन चौधरी

नेता, टिकट और गिरगिट

व्यंग्य संग्रह

सुमन चौधरी

प्रकाशक:
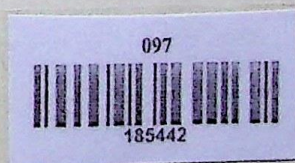
3/II हाइडिल कालोनी, बिजनौर, (उ.प्र.) 246701,

ISBN: 81-89067-02-8

प्रकाशक: अविचल प्रकाशन, 3/II हाइडिल कालोनी, बिजनौर (उ.प्र.) 246701. दूरभाष: (95)01342-263659. **संस्करण:** 2004. **कृति:** नेता, टिकट और गिरगिट. **लेखिका:** सुमन चौधरी. **आवरण:** केशव हेगड़े. **शब्द संयोजन:** अखिल ग्राफिक्स, बिजनौर (उ.प्र.). **मुद्रक:** राज प्रिंटर्स, मेरठ.

NETA TICKET AUR GIRGIT: 2004
By. SUMAN CHAUDHARY. Rs.80/-

समर्पित
श्रद्धेय पिताश्री
स्व.महीपाल सिंह जी
को सादर.
-सुमन चौधरी

शुभाशंसा

आज का जीवन विविध विद्रूपताओं, विडम्बनाओं तथा विषमताओं से पूरित है, जिनसे भावुक मन प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। सामान्य जन इनके प्रति क्षोभ व्यक्त करके रह जाता है किन्तु भावुक हृदय व्यक्ति इन्हें इस रूप में प्रस्तुत करता है कि मानव का मन गुदगुदी से भर उठता है। इनसे उसे दिशा-निर्देश भी प्राप्त होता है। ऐसे ही भावों से ओतप्रोत रचनाएँ व्यंग्य-रचनाएँ कहलाती हैं।

चुभती शैली में लिखी गई विचारप्रधान रचनाओं ने आज अपनी पृथक् सत्ता स्थापित कर ली है। इनमें लेखक का सर्वाधिक ध्यान इस बात पर रहता है कि वह जिस व्यक्ति, घटना, कुरीति अथवा मतमतान्तर पर व्यंग्य कर रहा है, उसे उसने निकट से देखा या भोगा है। इनकी अभिव्यक्ति में व्यंजना का प्राधान्य रहता है। व्यंग्य के क्षेत्र में जगत् के समस्त विषय– सामाजिक कुरीतियाँ, राजनीतिक कदाचार, धार्मिक आडम्बर, घिसीपिटी मान्यताएँ तथा परम्पराएँ आदि सभी कुछ आ जाते हैं। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि हास्य का उद्देश्य परिहासपूर्ण मनोरंजन मात्र होता है जबकि व्यंग्य में मनोरंजन के साथ-साथ किसी विडम्बनापूर्ण स्थिति का चित्रण होता है, जो प्रभाव की दृष्टि से हँसाने के साथ मानव मन में एक टीस और दर्द उत्पन्न करता है। सुमन चौधरी द्वारा लिखित व्यंग्य-लेखों का संग्रह 'नेता, टिकट और गिरगिट' इन गुणों से पूरित है।

'व्यंग्य-संग्रह' में संकलित व्यंग्य-लेखों का फलक अत्यन्त विस्तृत है, जिसकी परिधि में वैलन्टाइन डे, बापू का दर्द, विद्युत कटौती, बिन लादेन, वीरप्पन, चुनावी चक्कर, आरक्षण-नीति, राजनीति में वंशवाद, किन्नर का विधायक बनना, मंत्री-मंडल विस्तार, जातिवाद की विष-बेल, दलबदलू नेता, दलाल अंकल, कुत्ता पुराण, दीपावली की 'सरस' और 'नीरस' शुभकामनाएँ आदि समाहित हैं। इन सब पर लेखिका ने मीठी

चुटकी ली है।

'नेता, टिकट और गिरगिट' में सर्वाधिक लेख छद्म नेताओं पर हैं। आज का युग नेता प्रधान है। उनके 'कारनामों' ने उन्हें 'ख्याति' के शिखर पर पहुँचा दिया है। यदि यही स्थिति रही तो नए युग का नाम 'नेता युग' होगा।

लेखिका ने कई व्यंग्य-लेखों में प्रतिपक्ष के रूप में 'भैय्या जी' पात्र की कल्पना की है। ये भैय्या जी टाइप लोग हमारे इर्द-गिर्द भी रहते हैं। यह बात दूसरी है कि हम इन्हें देखकर भी अनदेखे जैसे रह जाते हैं।

'नेता, टिकट और गिरगिट' आयुष्मती सुमन चौधरी की, पुस्तक रूप में प्रकाशित प्रथम कृति है, जो अपने विषय वैविध्य, व्यंजना एवं प्रखरता के कारण 'व्यंग्य' के क्षेत्र में अपना स्थान बनाने में समर्थ होगी। मुझे आशा है कि यह क्रम आगे भी चलता रहेगा।

–डा.रामस्वरूप आर्य
से.नि. अध्यक्ष, हिंदी-विभाग
वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ.प्र.).

अपनी बात

हालाँकि पुस्तक के रूप में मेरा यह प्रथम प्रयास है, लेकिन लेखनी से पुराना नाता रहा है। बचपन से ही पढ़ने-लिखने का शौक रहा है। पुस्तकें मेरी बौद्धिक खुराक होने के साथ-साथ मार्गदर्शक भी रही हैं। हाईस्कूल से डायरी-लेखन प्रारम्भ किया था। समय-समय पर स्कूल-कालेज की पत्र-पत्रिकाओं में कविता, कहानी आदि लिखकर भेजती थी। वैसे लेखन मेरे लिए 'स्वान्तः सुखाय' का मसला रहा है। कभी कहीं कुछ दरका या जुड़ा तो भावनाएँ स्वतः ही कागजों के हवाले होती रही हैं। बचपन से ही मेरे पू.पिता स्व.श्री धर्मपालसिंह तोमर मेरे आदर्श रहे हैं। मेरी माता श्रीमती शकुंतला देवी एक सीधी-साधी महिला हैं। पिता जितने अनुशासनप्रिय एवं सख्त अधिकारी के रूप में जाने जाते थे, अंदर से उतने ही कोमल एवं परोपकारी व्यक्ति भी थे। उनके दिये संस्कार आज भी अन्याय के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा देते हैं।

जीवन-साथी के रूप में मुझे डा.अशोक चौधरी एक सहृदय व्यक्ति मिले। संयुक्त परिवार मिला। घर-गृहस्थी में लेखन निरंतरता नहीं पा सका, रुक-रुक कर जो कुछ लिखा गया, वह सहेजा नहीं गया। अब बच्चे जिम्मेदार हो गये, अन्य पारिवारिक जिम्मेदारियाँ भी कुछ कम हुईं, तो लेखन को गति मिलने लगी।

कभी-कभी जिंदगी में कुछ ऐसा घटित हो जाता है, जो हमें बेहद उद्वेलित कर देता है। वाकया करगिल युद्ध का है, जब देश के लिए अनेक वीर सपूत सीमा पर अपनी आत्माहुति दे रहे थे। समूचा राष्ट्र आक्रोश के दौर से गुजर रहा था। उस बीच दूरदर्शन पर समाचारों एवं समाचार-पत्रों में देश के शहीदों की, आत्माहुति देनेवाले समाचारों को पढ़-सुन कर मैं अंतर्मन की गहराइयों तक दुःखी हो गई थी। अनेक क्षण तो ऐसे भी आये जब दूरदर्शन पर समाचारों के साथ शहीदों की अंत्येष्टि के दृश्यों को

दिखाया जाता तो आँखों से बहनेवाले आँसुओं को रोक पाना कठिन हो जाता। तब ऐसे ही क्षणों में मुझे मेरे पति ने प्रोत्साहित करते हुए कहा– 'सुमन! कुछ सार्थक कार्य क्यों नहीं करती, यूँ आँसुओं को जाया क्यों करती हो?'

उनकी बात दिल में बैठ गई। तब हमने मिलकर 'रोटरी क्लब इंडस्ट्रीयल एरिया' के बैनर तले करगिल शहीद फंड के लिए 'डोर-टू-डोर' जाकर डेढ़ लाख की राशि जमा कराई। उस समय शारीरिक श्रम के साथ-साथ लेखनी भी मुखर हो उठी। इसी माहौल में बिजनौर मुख्यालय से प्रकाशित होने वाले सांध्य दैनिक 'चिंगारी' के सम्पादक डा.सूर्यमणि रघुवंशी से भेंट हुई। उनकी प्रेरणा से मैं 'चिंगारी' से जुड़ी। जो आज भी जारी है। हालाँकि इसके बाद अनेक पत्र-पत्रिकाओं के साथ यह सिलसिला चलता रहा है, पर जो स्नेह-सम्मान भाई डा.सूर्यमणि रघुवंशी से मिला वह अविस्मरणीय है।

यूँ तो मुझे समसामयिक लेख एवं कहानी लिखना पसंद है। लेकिन समाज में व्याप्त विसंगतियों ने मुझे अंदर तक झंझोड़ा। हम समाज को तो नहीं बदल सकते हैं, पर उसकी खामियों की ओर संकेत तो कर ही सकते हैं। मेरे विचार से अपनी बात यदि हम सीधे-सीधे ढंग से कहते हैं तो उसका असर कम होता है। ताने, उपदेश भी किसी को रुचिकर नहीं लगते हैं। पर यदि वही बात हम हास्य-व्यंग्य के माध्यम से कहते हैं, तो उसकी चोट व्यक्ति को फटकारकर, दुलारकर, गुदगुदाकर समाज में फैली विसंगतियों एवं विद्रूपताओं पर विचार करने के लिए प्रेरित करती है। संभवतः रचनाकार का उद्देश्य भी यही होता है, इसीलिए व्यंग्य का रास्ता मुझे अधिक प्रीतिकर लगा।

वर्तमान में समाज में भ्रष्टाचार, घोटाले, भुखमरी, अशिक्षा, बेरोजगारी, भारतीय समाज का पश्चिमीकरण जैसी अनेक ज्वलंत समस्याएँ हमारे सामने खड़ी हैं। राष्ट्र के कर्णधार कहे जाने वाले लोग, भावी पीढ़ी के सामने अपना कोई आदर्श प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं। वे आकंठ भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता में डूबे हुए हैं। हर बार चुनाव में मुखौटे बदल जाते हैं, पर आचरण वही का वही रहता है। इनके दंश से पूरा समाज बिलबिला रहा है। समाज में व्याप्त इन्हीं सब विषम परिस्थितियों, विसंगतियों एवं विद्रूपताओं

को लक्ष्यकर, मैंने अपनी लेखनी को शब्द देने का प्रयास किया है।

मेरी इन व्यंग्य रचनाओं को पुस्तक रूप देने के लिए मुझे सर्वाधिक उत्प्रेरित करने वाले हैं– राजकीय इंटर कालेज, बिजनौर के भौतिक विज्ञान के वरिष्ठ प्रवक्ता, कहानीकार एवं रत्न-ज्योतिषविद आदरणीय श्री राजेन्द्रकुमार शर्मा। अन्यथा मेरी ये रचनाएँ यहाँ-वहाँ एवं पत्र-पत्रिकाओं तक ही रह जातीं। इसके लिए मैं आदरणीय शर्मा जी की आभारी हूँ।

मेरी रचनाओं के सबसे पहले पाठक, समीक्षक एवं आलोचक मेरे जीवन-साथी डा.अशोक चौधरी हैं, जिन्होंने मेरी त्रुटियों को सुधारने में सदैव मदद की है और मुझे मानसिक संबल दिया है। साथ ही मेरी पुत्री उत्तरा एवं पुत्र रोहन जिम्मेदार होने के साथ मेरे लेखन को सदैव प्रोत्साहित करते हैं। मैं अपने परिवार के लिए क्या कह सकती हूँ, मात्र स्नेह के सिवाय।

डा.अवनीश अग्रवाल, श्री रजनीश अग्रवाल, डा.नीरज गुप्ता, डा. राकेश गुप्ता, श्री नीरज चौधरी, श्रीमती आभासिंह एवं श्री अशोक निर्दोष ने एक सचेत पाठक होने के नाते जो अमूल्य सुझाव मुझे समय-समय पर दिये, उनके लिए मैं उनकी आभारी हूँ।

इनके अतिरिक्त श्री मुकुल सिंघल (आई.ए.एस.), उनकी सहधर्मिणी निवेदिता जी, डा.अशोक शर्मा (उपनिदेशक सूचना विभाग, मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश) एवं श्री आर.एम. अग्रवाल (आई.टी.एस.) व उनकी सहधर्मिणी स्वप्ना ने मेरे लेखन को बार-बार प्रोत्साहित किया। जो मेरे प्रति उनके स्नेह एवं सहयोग को दर्शाता है। मैं उनकी आभारी हूँ।

श्रद्धेय गुरुवर डा.रामस्वरूप आर्य जी ने अस्वस्थ रहते हुए भी अपनी पूर्व छात्रा के इस संकलन को आद्योपांत पढ़ा और जो आशीर्वचन दिये, उनके प्रति में अपनी श्रद्धा ही व्यक्त कर सकती हूँ, केवल आभार व्यक्त कर गुरुपद की गरिमा को लघुता प्रदान करना मुझे उचित नहीं लगा।

'अविचल प्रकाशन' के सचिव, कवि, व्यंग्यकार एवं समीक्षक डा.गजेन्द्र बटोही ने अपनी व्यस्तताओं के उपरांत भी संकलन की रचनाओं को सम्पादित कर, अल्पावधि में ही संग्रह को आकर्षक रूप में प्रकाशित करने के लिए जो परिश्रम किया, उसके लिए मैं उनका आभार ही व्यक्त कर सकती हूँ।

साथ ही मैं अपने उन शुभचिंतकों की भी आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे हौसलों को तोड़ने में कभी कोई कोताही नहीं बरती और उनके उन्हीं सद्प्रयासों ने, मुझे सदैव आगे बढ़ने की ऊर्जा प्रदान की।

अन्त में, 'नेता, टिकट और गिरगिट' के रूप में मेरा प्रथम व्यंग्य संग्रह आप सुधी पाठकों के हाथों में है। मेरी कोशिश रही है की आपकी अपेक्षाओं पर खरी उतर सकूँ, पर अंतिम निर्णय का अधिकार आपको ही है। संग्रह पर आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी।

भविष्य में पुनः मिलने के वायदे के साथ।

गंगा स्नान, 2003
बिजनौर.

–सुमन चौधरी.

अनुक्रम...

नेता, टिकट और गिरगिट/11

देश सेवा बनाम पार्टी सेवा

नेता जी बड़ी जल्दी-जल्दी में जा रहे थे और हड़बड़ी में हमसे टकरा गये। दोनों की नजरें मिली, नजरों में कुछ पहचान-सी झलकी। नेता जी हमसे बोले– 'अमा यार! तुम तो अपनी पार्टी के हो, अपने हो, अगर चोट भी लग जाती तो झेल जाते और धूल को पुरानी पार्टी की तरह झाड़ कर उठ जाते।'

हम हैरान, परेशान कि नेता जी क्या कह रहे हैं? कहाँ धूल और कहाँ पार्टी। दोनों में क्या समानता? लेकिन सोचा कि जब माननीय नेता जी कह रहे हैं तो कोई तथ्य तो होगा ही।

'हमने नेता जी से पूछा कि आप 'आजकल' कौन-सी पार्टी में है?' आजकल, इसलिए क्योंकि आज और कल की पार्टी में परिवर्तन हो जाता है।

नेता जी बोले– 'भैय्या! ऐसा है कि हम कल तक तो 'सेवादल' में थे, चुनाव सिर पर हैं, सो टिकट की जुगाड़ में लगे थे, लेकिन लगता है कि टिकट अबके गरीबदास को मिलेगा, हमें नहीं। दूसरी पार्टी वाले हमें टिकट देने को तैयार हैं। इसलिए सोचते हैं कि हमें अब 'मेवादल' में चले जाना चाहिए।

हमने हड़बड़ाकर पूछा कि 'नेता जी! आप रोज-रोज पार्टी बदलेंगे, तो आपकी छवि खराब हो जाएगी?'

नेता जी बोले– 'बेटा! अभी तुम बच्चे हो, राजनीति में कच्चे हो, अरे! हमें अपनी छवि की चिन्ता नहीं है। हमें तो चिन्ता अपने प्यारे देश की है। हमें तो देश-सेवा करनी है। चाहे वह किसी पार्टी से करें, मतलब सेवा से है, पार्टी से नहीं। जरा सोचो, अगर एक ही पार्टी से चिपके रहेंगे तो देश की तरक्की कैसे होगी? भैय्या देश तो सबका एक ही है और सारी पार्टियाँ भी देश की हैं, फिर पार्टियों में भेद-भाव कैसा?

देश के आगे पार्टियाँ गौण हैं। देश की निष्ठा के आगे पार्टी की निष्ठा गौण है और फिर उद्देश्य तो सारी पार्टियों का देश-सेवा ही है, इसलिए सारी पार्टियों को समभाव से देखना चाहिए।

नेता जी आगे बोले, अच्छा भैय्या अब हम चलते हैं। क्योंकि पार्टियों के आला-कमानों से मिलना है। जिस पार्टी से भी टिकट मिलेगा, हम उसी के द्वारा देश-सेवा कर देंगे। तुम कल अखबार में पढ़ लेना कि हम कौन-सी पार्टी से चुनाव लड़ रहे हैं।

जाते-जाते नेता जी बोले– 'बेटा बुरा मत मानना! तुम शुरू से एक ही पार्टी में चिपके पड़े हो, इसलिए तरक्की नहीं कर पाए और न तुम्हें कभी टिकट मिला। हमारी बात मानो, तो पार्टी मोह छोड़कर देश-सेवा का मोह पालो, तभी तरक्की कर सकोगे।

और नेता जी शान से अकड़ते हुए चले गए, हम किंकर्तव्य-विमूढ़ से खड़े रह गये और उलझन में पड़कर सोचने लगे कि वाकई देश-सेवा का मोह पार्टी मोह से बड़ा है? देश बड़ा है, या पार्टी...?

❑❑❑
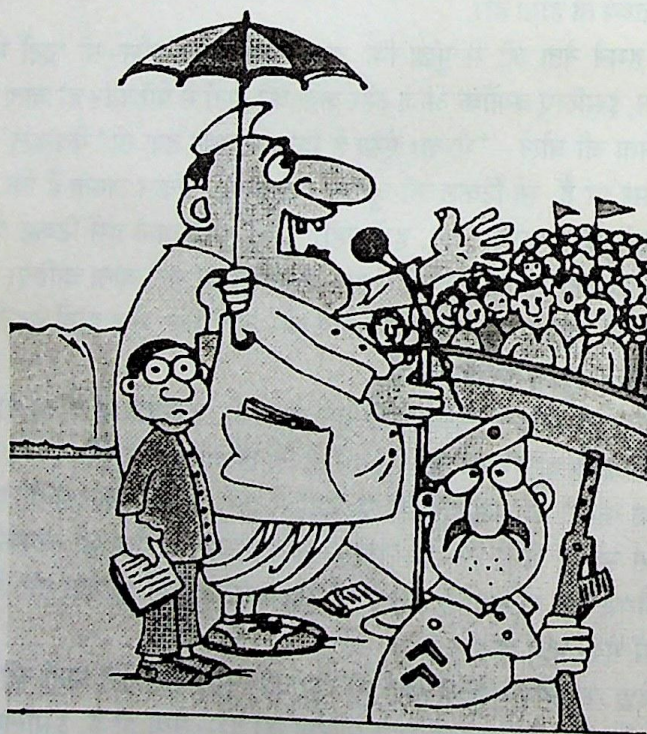
एक मुलाकात बापू से

हम बेख्याली में घूमते-घूमते यूँ ही भटक रहे थे, कि दूर एक मानवाकृति दिखाई दी। जो दूर से 'बापू' जैसी लग रही थी। उत्सुकता बढ़ी, पास गये तो देखा सममुच 'बापू' ही थे। तन पर लंगोटी, आँखों पर चश्मा, हाथ में लाठी, मगर बड़े उदास। उनकी आँखों में शायद आँसू भी थे। उनकी ऐसी दशा देख, हमने पूछा– 'बापू यह क्या, आपकी आँखों में आँसू?'

बापू ने उल्टे हमसे ही प्रश्न किया– 'बेटा! यह तुम्हारी दुनियाँ इतनी बेमुरव्वत क्यों होती जा रही है? आदमी इतना स्वार्थी, इतना हिंसक, क्यों बन गया है? मैंने तो दुनियाँ को अहिंसा का पाठ सिखाया था, इतनी जल्दी सब भुला दिया?

हमने लम्बी साँस छोड़ते हुए कहा– 'हाँ बापू! दुनियाँ शायद आपकी शिक्षा भूल चुकी है। लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं, कहीं धर्म के नाम पर, कहीं जाति के नाम पर...'

अब चौंकने की बारी बापू की थी। चौंकते हुए बोले– 'धर्म के नाम पर? मगर बेटा किसी भी धर्म में हिंसा के लिए तो कोई जगह ही नहीं है। दुनियाँ के सारे धर्म तो भाईचारा सिखाते हैं। खासकर हिन्दुस्तान में तो सभी धर्मों की गंगा-यमुना बहती है। सब मिल-जुलकर रहें, इसीलिए इस देश को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया था। वरना बेटा मैं भी पक्का धार्मिक था, मगर सबसे पहले हिन्दुस्तानी था।'

'बापू' वह आपके जमाने की बात थी।' कहते हुए मैंने बात को आगे बढ़ाया और कहा–'आज तो दाल जूतों में बँट रही है, कहीं जनता खुद बँट जाती है और कहीं धर्म-जाति के नाम पर बाँट दिया जाता है।

बापू को मेरी बातें रुचिकर नहीं लग रही थीं। मगर मैं कहता रहा– 'बापू अभी पिछले दिनों अमेरिका पर आतंकवादी हमला हुआ, जिसमें

हजारों निर्दोष जानें चली गईं। यहाँ 'धरती के स्वर्ग कश्मीर' में तो रोज ही आतंकवादी हमले होते रहते हैं, जिसमें सभी धर्मों के लोग मारे जाते हैं। औरतों और बच्चों तक को नहीं बख्शा जाता है। अभागा प्रदेश वर्षों से आतंक की मार झेल रहा है। यहाँ चन्द सिरफिरे 'जेहाद' के नाम पर आतंक फैला रहे हैं और बदनाम 'इस्लाम' को कर रहे हैं। धर्म की भट्टी में मासूम जानों को भून रहे हैं, मानवता के ये दुश्मन। क्या कटे सिर, बिखरा खून, चीखते-कराहते लोग, यही जेहाद है?'

ये बातें सुनकर बापू की आँखों में आँसू आ गये और उन्होंने दोनों हाथों से अपने कानों को बन्द कर लिया।

मैंने कहा– 'बापू आपने 'कान' तो बन्द कर लिए, मगर निर्दोषों की चीखें पीछा नहीं छोड़ेंगी, चाहे आप अपनी आँखें और मुँह भी क्यों न ढक लो? हिम्मत है तो देखो! हम कैसे जी रहे हैं? अधर्म, भ्रष्टाचार, गरीबी, अशिक्षा, सब कुछ अपने सीने पर कैसे झेल रहे हैं?'

बापू ने सिर थाम लिया और बोले– 'हे राम! अच्छा हुआ, जो ईश्वर ने मुझे पहले ही उठा लिया। मेरे सपनों का भारत क्या से क्या हो गया? देखते-देखते दुनियाँ ही बदल गई।'

'ईश्वर सबको सन्मति दे', कहकर बापू अनमने से लाठी टेकते हुए दूसरी ओर चले दिये और इसी के साथ मेरी नींद टूट गई, मुझे दुनियाँ की हालत के विषय में सोचकर घुटन महसूस होने लगी।

□□□

भैय्या जी का वैलन्टाइन डे

हाँफते-हाँफते भैय्या जी सीधे भागे चले जा रहे थे। हम घर के बाहर खड़े गली का दृश्यावलोकन कर रहे थी। टूटी टोंटी वाले नगरपालिका के एकमात्र नल पर पानी भरने वालों की न टूटने वाली कतार लगी थी। धक्का -मुक्की जारी थी, गोया पानी ने हो, राशन की दुकान हो।

खैर! बात भैय्या जी की हो रही थी, हमने उनसे मसखरी करते हुए कहा- 'तूफान मेल की मानिंद कहाँ भागे जा रहे हो? क्या कयामत का अंदेशा है?'

सुनते ही उन्होंने तुरंत अपनी ग्यारह नम्बर की सवारी को जोरदार ब्रेक लगाये, फिर कडुआ-सा मुँह बनकर बोले- 'बस! थारी यो टोक्कन वाली आदत मैंन्रे अच्छी ना लागे है, थारे से बचके ही जाना चाहूँ था, पर तन्नै पीच्छे सै टोक ही दिया...

पर हुजूर की सवारी कहाँ तशरीफ ले जा रही है इतना बन-ठन कर? उनका हुलिया देखकर मैं बड़ी मुश्किल से अपनी हँसी रोक रहा था, पर पकड़ा गया।

वे चिढ़कर बाले- 'पहले तो मुझे यो बता कि हमैं देख कै तम हँस क्यूँ रहे हो?

'वो! वो! कुछ नहीं, बस ऐसे ही' मैंने बचते हुए कहा।

'ना भाई! कुछ बात तो जरूर है, हम तो जाण कै रहेंगे।'

भैय्या जी! मैं सोच रहा था कि सुबह-सुबह आप इतने बन-ठन कर कहाँ जा रहे हो? कुर्ते-पैजामे की जगह सूट-बूट, टाई आखिर माजरा क्या है?

तन्नै के मतलब? गली कै तन्नै अपने नाम रजस्टरी करा ली है? म्हारा जहाँ जान कु जी करैगा वहीं जाऊँगा।

जाओ! जाओ! इतने अकड़ क्यूँ रहे हो। मैं भी नहीं पूछता कहाँ जा रहे हो? मैंने कुछ ऐंठ कर कहा, तो वे कुछ नर्म लहजे में बोले- 'भाई! मैंन्रे कहीं पढ़ा था कि 'वैलटैन डे' का मतलब है कि जिससे तम प्यार करो हो, उसे बताना

पड़े है कि मैं थारे से प्यार करूँ हूँ।

'वैलटैन डे' नहीं 'वैलन्टाइन डे' मैंने उनकी गलती सुधारते हुए कहा।

'इब इसतै के फरक पड़ैगा। मतलब तो प्रेम जतान से है।' उन्होंने मेरी बात काटकर कहा।

पर भाई जी यह दिन तो बीत गया, आप तो लेट हो गये।

ई बात तो मैंन्ने भी पता, पर बसंत का महीना तो ईभी चाल रहा है, यौ तो पूरा महीणा ही 'वैलटैन डे' सा लागे है। तो हमने भी सोची कि चलकर अपनी गुलाबो से बता दूँ कि हम थारे से परेम करै है।

'पर भैय्या जी अपनी उमर तो देखो! इस उमर में क्या ये चोंचले अच्छे लगते हैं?' मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की।

तो वे गरज कर बोले– 'अरे अहमक! तुझे कुछ भी नहीं बारा? भला इश्क करने की भी कोई उमर हौवे है? उमर का के है, इस पर तो जात-पाँत, मजहब का भी असर ना पड़ै है।

हाँ भैय्या जी! आप सही कह रहे हो, वाकई इश्क पर किसी का जोर नहीं है। यह बात तो गालिब साहब बहुत पहले कह गये।

पर उन्हें गालिब मियाँ से कोई सरोकार न था।

सो भैय्या जी मेरे से मुखातिब होकर बोले– 'एक बात पूछूँ भाई तै से?'

'पूछिये' मैंने कहा।

तमनै कधी किसी सै परेम किया है? देख सच्ची-सच्ची बताइयो, झूठ मती बोलियो। इब तो बालक जवान हौण से पहलै ही इलू-इलू करन लागे है, तेरा के तजरबा है?

'आप भी बस, क्या बात करते हो?' हमने कुछ शरमाकर कहा, तो वे हँसने लगे।

'बता दे! बता दे!, सरम मती कर' उन्होंने कहा।

भैय्या जी वो हमारे जमाने में इश्क का इजहार करना खतरे से खाली नहीं था। मैंने कुछ हिचकते हुए कहा।

तो वे बोले– 'हम इजहार की ना पूछे है यो बता परेम किया था कि नाहिं?'

अब भैय्या जी आपसे क्या छुपाना, एक बार हमने अपनी कक्षा में पढ़ने वाली कुमारी कलावती जी को प्रेम-पत्र लिखा था।

'अच्छा!' वे आश्चर्य से मेरे पास खिसक आये। आग्गे बता फिर के हुआ?

होना क्या था भैय्या जी! उस सुकुमारी ने वह प्रेम-पत्र सीधे अपने चार मुस्टंडे भाइयों को पकड़ा दिया और फिर जो हमें बेभाव की पड़ी, आज भी सर्दियों में हड्डियाँ दुखने लगती हैं। इस प्रकार उन जालिमों के डंडे ने मेरे प्यार की भ्रूण हत्या कर दी, बस तब से हमने कान पकड़ लिये थे, ये इश्क करना हमारे बस का रोग नहीं है।

हो, हो कर वे जोर-जोर से हँसने लगे– 'तो भाई तू तो कच्चा प्रेमी निकला, जब तेरे बस का ना है तो तैन्ने ठीक ही करा, जो फेर परेम के चक्कर में ना पड़ा।'

हमने लम्बी साँस खींच कहा– 'हाँ! आप ठीक फरमा रहे हो, हम इस क्षेत्र में अनाड़ी रहे, पर भाई जी अब तो जमाना काफी बदल गया है। पहले डरते थे अब सीना ठोककर खुलेआम इश्क का इजहार करते घूमते हैं आजकल के नौजवान। पहले इश्क इबादत था, पूजा था अब भाई लोगों ने पता नहीं इसे क्या-क्या विभूषण दे डाले हैं।

या तो तैन्ने ठीक कही, परसों रमुआ तेली का छोटा छोरा गाता फिरै था-- 'कर दै मुश्किल जीणा, इश्क कमीणा' –भाई सब टैम-टैम की बात है, उन्होंने कहा।

'भैय्या जी! छोड़िये भी इन सारी बातों को, आप तो हमें यह बताओ कि टैम के रंग में रंग कर आप अपने इश्क का इजहार किससे करने जा रहे हो?' हमने पुन: उन्हें छेड़ने की गरज से कहा।

उन्होंने हमारी नासमझी पर माथा पीट लिया और बोले– 'अरे! तू इब बी ना समझा? तेरी भाभी आजकल अपनी माँ के धौरे गई हुई है, मैंन्ने सोचा कि जिब वक्त ही परेम जतान का आ गया तो मैं उसे बता दूँ कि मैं तुझे बहुत परेम करूँ हूँ, तू ही हमारी गुलाबो है, हमारी हेमा माल्लन है। देख भाई! मैं जरा जल्दी में हूँ, फेर बात करेंगे।

और वे सरपट दौड़ने लगे...

□□□
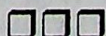
सरकार बनाने का गुर

मैं आज सुबह-सुबह भाई जी के घर जा धमका। मन ही मन सोच रहा था आज तो चाय के साथ कुछ मीठा उड़ाया जाय। घर में श्रीमती जी हमें मीठा खाते देख कुछ ऐसे घूरती हैं कि रसगुल्ला भी हमें करेले का बदमजा स्वाद दे जाता है। बुरा हो कमबख्त इस शुगर की बीमारी का, जो हमारा और मिठाई का, विपक्ष और कुर्सी जैसा नाता हो गया।

लीजिए साहब, हम तो गर्म-गर्म जलेबी के ख्वाब देख रहे थे, मगर भाई जी के हालात कुछ और दास्तान बयान कर रहे थे। भाई जी कहीं जाने के लिए तैयार हो रहे थे और जल्दबाजी में शर्ट के बटनों का समीकरण बिगाड़ बैठे थे। जिसे अब खींचतान कर चुनाव में बहुमत प्राप्त पार्टी द्वारा सरकार बनने जैसी कवायद कर रहे थे, झुंझला रहे थे।

उनकी यह हालत देखकर हमें हँसी आ गई, मगर वे चुनाव में हारे प्रत्याशी की तरह खिसिया कर बोले– 'कुछ काम नहीं है क्या? सुबह-सुबह मुँह उठाकर यहाँ आ गये?

हमने हँसी दबाकर कहा– भाई जी! लाइये शर्ट मैं ठीक कर देता हूँ और मैंने सारे बटन खोलकर, क्रम से लगाकर शर्ट ठीक कर दी।

यह देखकर खुशी से भाई जो बोले– 'यार! तू बड़े काम का आदमी है। बिगड़ी सँवार देता है। ऐसा कर, तू मेरे साथ लखनऊ चल, वहाँ तिगड़मी लोगों की जरूरत है।'

'क्यों भाई जी! वहाँ क्या शर्ट के बटन लगाने की प्रतियोगिता होने वाली है।' मैंने पूछा।

तू मूर्ख का मूर्ख ही रहेगा। उन्होंने माथा ठोंकते हुए कहा– 'वहाँ सरकार बनाई जाएगी, बटन नहीं लगाने होंगे।'

तो हमारा वहाँ क्या काम है? मैंने प्रश्न किया।

'तबला बजाएँगे' उन्होंने चिढ़कर कहा।

लेकिन मुझे तबला नहीं, ढोलक बजाना आता है, चलेगा क्या?

भाई जी ने खा जाने वाली नजरों से घूरते हुए कहा– 'बेटा! वहाँ सरकार बनेगी, हाँ तुम हमें यह बताओ कि तुम चुनाव में जीतने वाले कितने प्रत्याशियों को जानते हो?'

'यही कोई तीन-चार को, एकाध और निकल सकता है।'

यह सुनकर भाई जी उछल पड़े। बादशाहो! तुस्सी तो कमाल के आदमी हो। जरा सरकार बनने तक छिपकर रहना। किसी पार्टी को अगर विधायकों की कमी पड़ गई तो तुम्हारा अपहरण हो सकता है।

पर भाई जी! हम सरकार बनाने में कैसे मदद कर सकते हैं? और आप किस पार्टी की सरकार बनवाना चाहते हो?

भाई जी धूर्त हँसी हँसने लगे– 'जो पार्टी हमारी मदद माँगेगी, यानी ज्यादा पैसा देगी, हम अपने विधायकों से उसी को समर्थन दिलवा देंगे। यार जी तो सत्ता पक्ष के साथ हैं, हमें आम खाने हैं, गुठली नहीं गिननी।

'मगर यह तो गलत बात होगी फिर सारे व्यक्ति तो बिकनेवाले नहीं होते', हमने विरोध किया।

'हम तो जरूरतभर के ही इस्तेमाल करेंगे, सारे कहाँ चाहिए? ठीक है पैसे नहीं तो मंत्रीपद तो चल सकता है।' उन्होंने कहा।

मैं हतप्रभ-सा उनका मुख देख रहा था, और सोच रहा था कि अगर ये पार्टी के कार्यकर्त्ता न होकर मुखिया होते तो चाणक्य को भी पीछे छोड़ देते, क्योंकि टिकिट बाँटने के बाद, जीतने के बाद, सरकार बनाने का गुर आना बेहद जरूरी है। आज की इस जुगाड़ू राजनीति में भाई जी जैसे लोगों का भविष्य उज्ज्वल है। हाँ, जब अपराधी नेता, मंत्री बन सकते हैं तो भाई जी क्यों नहीं? और मैं बिना चाय पिये ही अपने घर लौट आया।
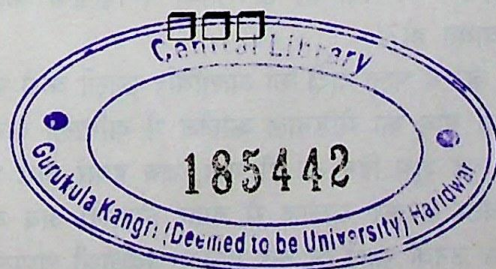
मेनू कार्ड

घर में चारों ओर मुन्ना बाबू की ढूँढ़ मची थी। न जाने वे कहाँ छुपे बैठे थे। सब उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़ कर थक गये थे। अचानक दादी कहने लगीं– 'अरे! मेहमानों के कमरे में ढूँढ़ा या नहीं?' और फिर उन्हें जब वहाँ ढूँढ़ा गया तो जनाब, मुन्ना बाबू पलंग के नीचे छिपकर दवा खाते मिले। किसी तरह बहला-फुसला कर दवा उनके हाथ से छीनी गई और यह देखकर सबने चैन की साँस ली कि मुन्ना बाबू कोई खतरनाक दवा नहीं, विटामिन की गोली खा रहे थे, और वह भी 'सैम्पल वाली।'

यह दृश्य देख, दादी हुलसकर बोलीं– 'हमार बिटवा बड़ा होकर जरूर डाक्टर बनेगा, ईका तो अभी से दवा की पहिचान है।'

पर दादा किलसकर बोले– 'हमारा बचुआ बड़ा होकर जो कोनों डाक्टर बन गवा तो सैम्पल की सारी दवा खुद ही खा जावेगा।'

खैर! बात आई-गई हो गई, और धीरे-धीरे हमारे मुन्ना बाबू बड़े हो गये। विद्यार्थी वे औसत दर्जे के निकले। दो-तीन बार मेडिकल की परीक्षा दे चुके थे, पर नतीजा शून्य ही रहा।

दादी पोते की सच्ची हितैषी थी। एक दिन पति से बोली– 'मुन्ने के दादा! ई दौलतवा, का तुम छाति पै धरिके ऊपर ले जाओगे? बचुवा परीच्छा देते-देते हलकान हो गवा है। डोनेशनवा दे-दिलाके काहे ना बचुवा को डाक्टर बनवावत हो?'

और जनाब भला दादी का आशीर्वाद खाली कैसे जाता? सो पैसे की माया से मुन्ना बाबू का मेडिकल कालेज में दाखिला करा दिया गया।

और वह शुभ दिन आ ही गया, जब हमारे हीरो मुन्ना बाबू एम.बी. बी.एस. डाक्टर बनकर कालेज से बाहर निकले। अब यह अपना-अपना नसीब है कि उनके साथ के कई होनहार विद्यार्थी चप्पल घिसते रह गये।

मुन्ना बाबू को चूँकि सरकारी अस्पतालों का 'रामराज्य' बेहद पसन्द

था, इसलिए उन्होंने प्राइवेट प्रैक्टिस की जगह सरकारी क्षेत्र चुना। सरकार मोटी तनख्वाह दे रही है, और वे घर पर भी मरीजों की सेवा करते हैं। बचपन से ही 'सैम्पल की दवा' के शौकीन मुन्ना बाबू दवा तो अब भी खा रहे हैं पर दूसरे रूप में।

अब अस्पताल सरकारी है, इसलिए अक्सर वहाँ की एक्सरे, अल्ट्रासाउंड, ई.सी.जी. आदि की मशीनें खराब ही पड़ी रहती हैं। पर शहर के प्राइवेट डाक्टर्स की तो ठीक-ठाक हैं, सो हमारे मुन्ना बाबू 'जनहित' में मरीजों को वहाँ भेज देते हैं। 'भाईचारे' में विश्वास रखने के कारण, दादी के आशीर्वाद से मुन्ना बाबू का 'धन्धा' खूब फल-फूल रहा है। अगर खुदा न खास्ता कभी आप बीमार हो जाएँ तो एक बार उन्हें सेवा का मौका अवश्य दें। आपके शहर में ही तो रहते हैं, हमारे मुन्ना बाबू। हाँ! सरकारी मुलाजिम होने के कारण बेचारे अन्य बंधु-बांधवों की तरह आपरेशन इत्यादि का 'मेनू कार्ड' नहीं टाँग सकते हैं, सो जो भी आप दे देंगे, प्रसाद समझकर ग्रहण कर लेंगे।

□□□

तुम मुझे कुरसी दो, मैं तुम्हें...

हर कदम पर वायदे ही वायदे। रात-दिन वायदे ही वायदे। ऐसा लगता है कि मानो फिजा में चारों ओर वायदे तैर रहे हैं। शायद वायदों की बाढ़ आ गई है, लेकिन इनके जाल में मत फँसियेगा, क्योंकि ये तो बरसाती नदी का उफान हैं, जो कुछ समय बाद उतर जायेगा। किसी को याद नहीं रहेगा कि कौन-सा वादा किया था, कौन कमबख्त इन्हें याद रखने की जहमत पाले, क्योंकि रात गई बात गई।

जुबान पर वायदा, मुद्रा में विनम्रता, हाथ जोड़े नमस्कार की पोजीशन, यह है नगरपालिका चुनाव में खड़े प्रत्याशियों का एक चित्र। यह मुद्राएँ शायद कहीं से उधार ली गई होंगी। क्योंकि चुनाव सम्पन्न होते ही ये चित्र पटल से गायब हो जाएँगे और तब आपको साहब या मेमसाहब (जीते हुए प्रत्याशी) से मिलने के लिए समय लेना होगा। चाहे आज वे हमारे-आपके बीच से ही एक हैं। जीतने के बाद यकाएक वी.आई.पी. बन जाएँगे, फिर हम उनकी विनम्र मुद्रा तो क्या खुशनसीब चेहरा भी देखने को तरस जाएँगे।

खैर! सिर्फ इनका ही क्या दोष, यह चुनाव तो महज वैसे भी एक छोटा-सा चुनाव है। विधानसभा और लोकसभा में पहुँचने वाले और भी लाजबाब हैं। जनता के प्रति कोई जवाबदेह नहीं है। सिर्फ चुनाव के वक्त यह बेचारी याद आती है।

चुनाव में जनता जनार्दन होती है। चुनाव के बाद जनार्दन होते हैं जीतने वाले। अब जैसे ईश्वर हर समय हमारे आसपास ही रहते हैं, मगर अज्ञानता वश हमें दिखाई नहीं देते हैं। वैसे ही हम मूढ़ प्राणी इन जीवों को देखने में असमर्थ हो जाते हैं, अब इसमें इन गरीब प्राणियों (?) का क्या दोष?

कमबख्त सारा दोष तो कुरसी का है। इसका नशा ही कुछ ऐसा होता है। मेरी बात का यकीन न हो तो दुनिया के सारे नशेड़ियों को बुलाइये

और साथ ही कुरसी प्रेमियों को भी, दोनों से पूछिए कि मियाँ कौन-सा नशा सर्वश्रेष्ठ है? तो कुरसी का नशा ही प्रथम स्थान प्राप्त करेगा।

यह सत्ता की कुरसी ही है जो बैठनेवाले की बुद्धि भ्रष्ट कर देती है। व्यक्ति को भ्रष्टाचार के दलदल में डूबो देती है। उस पर बैठने वाले को केवल कुरसी ही देखाई देती है, बाकी चीजें अदृश्य हो जाती हैं, एक बार को पार्टी भी। वैसे भी पार्टी तो हाथ का मैल है, मकसद तो कुरसी ही है, चाहे किसी भी पार्टी को तोड़कर या जोड़कर मिले, किसी भी कुर्बानी (?) से मिले।

किसी पुस्तक में पढ़ा था कि प्राचीन काल में विक्रमादित्य का एक सिंहासंन था। जिस पर बैठते ही चरवाहा भी न्याय करने लगता था। वही सिंहासन कलियुग में सत्ता की कुरसी में बदल गया और बदलते समय के साथ उसके समीकरण भी बदल गये हैं।

जाने कहाँ खो गये विक्रमादित्य और उनका न्याय? अब तो त्रासदी में फँसी जनता है और मौज लेतै सत्ताधीश हैं। अब तो इस सिंहासन पर बैठने वाला केवल अपना फायदा देखता है। उसका मकसद कुरसी हासिल करना है। कुर्सी की चरण वंदना के लिए आपाधापी मची है। सभी कुरसी की चरणवंदना में कुछ ऐसे लीन हैं–

जय कुरसी मैया, जय कुरसी मैया
जो ध्यावे फल पावे, हे! कुरसी मैया।

नैया मेरी बीच भँवर में, पार लगाओ कुरसी मैया
तुम बिन लागे जग सूना-सूना हे! कुरसी मैया।

करयो इसे आबाद, जय कुरसी मैया
रात-दिन तेरे ही गुण गाऊँ, हे! कुरसी मैया

बस इक बार तुम मिल जाओ हे! कुरसी मैया
जय कुरसी मैया, जय कुरसी मैया।

अंजाम ए शौक

हम अपने पति महोदय के साथ पिछले दिनों दिल्ली गये। तो लगा कहाँ छोटे शहरों की थमी-थमी-सी शान्त जिन्दगी और कहाँ महानगरों की गहमा-गहमी, आपा-धापी। हम छोटे शहरों वाले जैसे, बड़ी जगहों पर जाकर कुछ हड़बड़ा जाते हैं। खैर! अभी दिल्ली के बारे में विचार-विमर्श चल ही रहा था कि हमारी कार के बराबर से एक जींस-शर्ट वाली स्मार्ट-सी मोहतरमा एक हाथ में मोबाइल दूसरे हाथ से अपनी 'होंडासिटी' कार का स्टेयरिंग थामे फर्राटे से कार ड्राइव करते हुए निकल गईं।

पति महोदय ने प्रशंसात्मक नजरों से उसकी ओर देखा, यकायक उनके मुँह से निकला– 'वाह! क्या कॉन्फिडेंस से गाड़ी चला रही है, बंदी।'

'नारी न मोहे नारी के रूपा' की तर्ज पर हमने मुँह बिचका कर कहा– 'इसमें कौन-सी खास बात है? कार तो कोई भी चला सकता है।'

सुनकर पति महोदय ने हमारी ओर देखा, कहा कुछ नहीं, पर उनकी नजरों से लगा मानो कह रहे हों– 'क्या तुम भी चला सकती हो?'

और साहब! हमने उसी समय मन ही मन ठान लिया कि हम भी इन मोहतरमा की तरह कार चलाकर दिखाएँगे।

घर लौटकर हमने अपने बच्चों से इस वाकये का जिक्र किया, तो हमारा शैतान बेटा हँसने लगा।

और बेटी बोली– 'वाह मम्मा! यानी अब आप भी उन आंटी की तरह जींस-टी शर्ट पहनकर कार चलाओगी?'

क्यूँ भई! क्या साड़ी पहनकर कार नहीं चला सकते?' हमने प्रतिप्रश्न किया।

नहीं-नहीं! ऐसी कोई बात नहीं, पर हमने सोचा जब आप कार चला सकती हो तो जींस क्यूँ नहीं पहन सकतीं, जवाब बेटे ने दिया।

अच्छा बाबा! अब बस भी करो, यह सब बाद में सोचेंगे। राहुल!

फिलहाल तो तुम किसी ड्राइविंग स्कूल में बात करके आओ। मैंने राहुल से कहा, तो उसने मेरा उत्साह देखकर फटाफट साइकिल उठाई और चल दिया ड्राइविंग स्कूल की ओर।

इधर हमारे मन में कल्पना अंगड़ाइयाँ लेने लगी– 'हाय! कित्ता अच्छा लगेगा, जब हम गाड़ी चलाएँगे। सब लोग हमें विशिष्ट नजरों से देखेंगे, और पड़ोसन नीना, वह तो जलकर कबाब हो जाएगी। फिर तो इन्हें भी मेरी तारीफ करनी ही पड़ेगी। और मैं जल्दी-जल्दी घर के काम- काज निपटाने लगी कि राहुल ड्राइवर को लेकर आता ही होगा।

थोड़ी देर बाद राहुल ड्राइविंग स्कूल से, एक ड्राइवर को पकड़ लाया और बोला– 'मम्मा! अब मेरा काम खत्म, आप जानो और यह ड्राइवर।

हाँ हाँ ठीक है! हम ड्राइवर से बात करने लगे।

ड्राइवर कुछ अकड़ू-सा था, पूछने लगा– 'गाड़ी चलानी किसे सीखनी है?'

'हमें सीखनी है भई! अब यह बच्चा तो सीखेगा नहीं।'

उसने आश्चर्य से हमारी ओर देखा और बोला– 'अच्छा आप सीखेंगी?'

'क्यों हम नहीं सीख सकते?'

'यह मैंने कब कहा?'

हम मन ही मन भुनभुनाए, हम क्या इसे 'आउट-आफ डेट' दिखाई दे रहे हैं? खडूस कहीं का, पर प्रकट में कहा– 'तुम्हें इससे क्या, कोई भी सीखे।'

'ठीक है! ठीक है! आपको भी सिखा देंगे।' उसने ऐसे कहा, मानो कोई एहसान कर रहा हो।

'पर पैसे कितने लगेंगे?' हमने सीधे काम की बात पर आते हुए कहा।

'देखिये मेमसाहब! पंद्रह दिनों के, पंद्रह सौ रुपये लगेंगे और एक दिन में आठ किलोमीटर कार चलवाएँगे। उसने खीसें निपोरते हुए कहा।

'पंद्रह सौ, कुछ ज्यादा हैं, कुछ कम नहीं हो सकते?'

'पेट्रोल के दाम आसमान छू रहे हैं, फिर आप कार चलाना सीख रही हैं कि साइकिल...'

'ठीक है ठीक है, कल से ही शुरू कर देते हैं।' हमने उसकी भाषण -बाजी से घबराकर कहा।

'तो ठीक है, कल सुबह ग्यारह बजे आप तैयार रहना।' उसने कहा और चला गया।

शाम को जब पति महोदय ऑफिस से घर आये तो हमने उन्हें अपनी कार सीखने की इच्छा बताई।

तो वे बोले– 'जब तुमने सोच ही लिया तो मैं क्या कहूँ, पर फिर भी सोच लो, कार है साइकिल नहीं। दिमागी सन्तुलन कायम रखना पड़ता है, जरा-सी चूक होते ही दुर्घटना हो सकती है।'

'आप भी बस, कभी अच्छा नहीं सोचते हो, हमारी हिम्मत बढ़ाने की बजाय हमें डरा रहे हो।' हमने कुढ़कर कह तो दिया, पर वास्तव में डर तो हम रहे ही थे।

इस बहसा-बहसी से उदासीन हो पति चाय पीने लगे।

खैर! जनाब! किसी तरह रात कटी, सुबह हो गई। जैसे-जैसे घड़ी की सुइयाँ ग्यारह के करीब आती जा रही थीं, हमारे दिल की धड़कनें भी बढ़ती जा रही थीं, तभी दरवाजे की घंटी बजी, दरवाजा खोला तो सामने ड्राइवर था।

'चलिये! मेमसाहब, देर हो रही है।'

'बेटे! दरवाजा बन्द कर लेना। हम गाड़ी चलाना सीखने जा रहे हैं।' हमने बच्चों से कहा तो हमारी सयानी बिटिया जल्दी से दही-पेड़ा ले आई।

मम्मा दही-पेड़ा खा लो, अच्छा शगुन होता है। उसने बड़ों की तरह कहा तो हमने चुपचाप खा लिया। गोया हम कार चलाने नहीं, युद्ध-भूमि में जा रहे हों।

उधर कमबख्त ड्राइवर मन्द-मन्द मुस्कुरा रहा था। खैर! हम धड़कते दिल के साथ भगवान का नाम लेकर, ड्राइविंग सीट पर बैठ गये।

ड्राइवर हमें समझाने लगा– 'यह स्टेयरिंग है, इसे गीयर कहते हैं और उसने एक-एक करके हमें एक्सीलेटर, ब्रेक, क्लच वगैरह सभी के बारे में समझा दिया, फिर वह बोला– 'अब आप गाड़ी स्टार्ट करके एक पैर से क्लच दबाकर, उसे धीरे-धीरे छोड़ें और दूसरे पैर से एक्सीलेटर दबाएँ।'

हमने उसके निर्देश का पालन किया, पर जैसे ही एक्सीलेटर दबाया तो कार राकेट की मानिंद भागी और सड़क के किनारे खड़े बिजली के खम्भे से टकराते-टकराते बची। ड्राइवर ने हमें खा जाने वाली नजरों से घूरा, पर गाड़ी 'कंट्रोल' कर ली।

इसी तरह हम धीरे-धीरे कार ड्राइव करने लगे। पति से बताया तो बोले– 'अभी तो ब्रेक, गीयर सब ड्राइवर के हाथ में है, अकेले चलाओगी तो पता लगेगा।'

इकरारनामे के पंद्रह दिन पूरे हो गये तो ड्राइवर बोला– 'देखिये! थोड़ी-बहुत गाड़ी तो आप चलाने लगी हैं, अच्छा होगा अभी आप साहब के साथ ही गाड़ी चलाएँ और वह पैसे लेकर चला गया। हमारा कार चलाना रफ्ता-रफ्ता जारी रहा।

एक दिन हमने बच्चों से कहा कि चलो तुम्हें घुमाकर लाते हैं, तो वे कुछ चुप से हो गये। हमारे ज्यादा इसरार करने पर कार में बैठ तो गये पर कुछ सहमे से।

हम कार लेकर चल दिये। एक जगह कार चलते-चलते अचानक बन्द हो गई। हमने स्टार्ट करने की बहुतेरी चेष्टा की, पर नामुराद घुर्र-घुर्र की आवाज के साथ बार-बार बन्द हो जाती थी। यह देखकर हमारे होनहार बच्चे कहने लगे– 'मम्मी याद आया आज हमें स्कूल से बहुत सारा होमवर्क मिला है। ऐसा करते हैं कल घूमेंगे। घर पास में ही तो है, हम पैदल ही चले जाएँगे और वे घर चले गये।'

एकला चलो रे! की तर्ज पर हमने हिम्मत न हार कर, पुनः गाड़ी स्टार्ट की तो कमबख्त झटके के साथ ऐसी आगे भागी कि यह नजारा देख कर आस-पास के रिक्शेवाले यह कहते हुए रिक्शा लेकर सामने से हट गये– 'नई ड्राइवर है, हट जाओ, नीचे आ गये तो बच्चे अनाथ हो जाएँगे।'

जाहिर-सी बात है, हमें सुनकर बुरा लगा, पर हमने सोचा कि बड़े कामों में थोड़ी-बहुत अड़चनें तो आती ही हैं। खरामा-खरामा हम आगे चले तो देखा, पी.डब्ल्यू.डी. की मेहरबानी से आगे की सड़क टूटी पड़ी थी, समझ में नहीं आ रहा था कि सड़क में गड्ढा है या गड्ढे में सड़क। वहाँ काफी पानी भरा था। लोग वहाँ से पैदल आ-जा रहे थे। उन्हें देखकर हमने गाड़ी की रफ्तार कम करनी चाही, पर हाय रे नसीब! हड़बड़ाहट में

पैर ब्रेक के बजाय एक्सीलेटर पर जा पड़ा, जिसके कारण छपाक से गन्दे पानी के छींटे उड़कर उन सज्जनों के ऊपर जा गिरे।

'जब गाड़ी चलानी नहीं आती है तो चलानी जरूरी है? धुले-धुलाये सारे कपड़े खराब कर दिये।' वे गुस्से में चिल्लाये।

अब हम उनसे क्या बताते कि हम पर उनसे बुरी गुजर रही है।

शायद आज का दिन ही कुछ खराब था। थोड़ी दूर ही गये तो देखा कुछ ग्रामीण महिलाएँ, वहाँ से गुजर रहीं थीं। हमें कार चलाते देख, उनमें से एक पल्लू मुँह में दबाकर बोली– 'अरी देख! दैय्या री दैय्या! जनानी कार चलावत है।'

पर हम सुनी अनसुनी कर आगे बढ़ गये। कुछ ही दूर गये थे कि सामने से एक ट्रक आता दिखा, उसे देखकर हमारे हाथ-पैर फूल गये। किसी तरह उस यमदूत से बचे तो पीछे से एक बस आ गई। जिसमें से सवारियाँ उतरने-चढ़ने लगी। इन सबसे छुटकारा पाकर चले ही थे, कि जाने कहाँ से एक बच्चा भागता हुआ बीच सड़क में आ गया। उसे बचाने के लिए हमने जोर से ब्रेक मारे ही थे कि एक स्कूटर वाला भी आ गया और फिर क्या हुआ? मत पूछिये, जोर से धॉय की आवाज हुई और इसके बाद हमें कुछ नहीं पता, क्या हुआ?

जब होश आया तो देखा हम अस्पताल में बिस्तर पर पड़े हैं। तमाम शरीर पर पट्टियाँ और पैरों पर प्लास्टर चढ़ा है। पास में चिंतित-से बच्चे और पति महोदय खड़े हैं। हमें आँखें खोलते देख उनके बुझे चेहरों पर कुछ चमक आई। हमने क्षीण-सी आवाज में पूछा– "हमें क्या हुआ और वह बच्चा तो ठीक है? जवाब हाँ में मिलने पर तसल्ली हुई।

पति कहने लगे– 'बच्चों ने घर आकर जैसे ही बताया कि तुम अकेली कार चला रही हो, तो मैं तुरन्त स्कूटर लेकर भागा, तभी शर्मा जी ने तुम्हारे एक्सीडेंट के बारे में बताया। वे उस समय वहीं थे, उन्होंने ही तुम्हें अस्पताल छोड़ा।

पति महोदय यह सब बता रहे थे और हम खिसियाये से उस घड़ी को कोस रहे थे जब हमें ड्राइविंग का शौक चर्राया। न हम जिद पालते और न यह दिन देखते।

□□□

तेल देखो तेल की धार देखो

नेता छदम्मीलाल कुछ हैरान परेशान थे। चिन्ता में घुलकर उनकी स्थूल काया सूक्ष्म हो चली थी। हमने उनकी यह हालत देखी तो सहानुभूतिवश पूछने लगे– 'नेता जी! यह आपको क्या हो गया, अच्छी-खासी सेहत थी, पिचका गुब्बारा क्यों बन गए?

नेताजी ने बड़ी मायूसी से उत्तर दिया– 'मैं बहुत कष्ट में हूँ, मेरी आत्मा कराह रही है।'

हमने कहा– 'क्यों किसी घोटाले में फँसने का अन्देशा है क्या?'

नेता जी छदम्मीलाल तमक कर बोले– 'मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ? अभी तो मिनिस्ट्री ही पक्की नहीं हुई है।'

हमने उत्सुकता से पूछा– 'मियाँ! चुनाव तो समझो आप जीत ही गये हो, अब समर्थन किसे दे रहे हो?'

वे एक लम्बी साँस खींच कर बोले– 'यही तो चिन्ता का कारण है, बड़ा ही कन्फ्यूज हो रहा हूँ। सत्तासीन होने वाली दोनों पार्टियों से निमंत्रण मिल रहा है। बीच में फँस रहा हूँ दोनों के। वर्तमान में तो लग रहा है 'अचल एण्ड कम्पनी' ही सत्ता में आएगी, मगर पता नहीं कितने दिन चलेगी? दूसरी ओर मैडम के संरक्षण में भविष्य तो दूसरी पार्टी का भी उज्ज्वल नजर आ रहा है और यदि मैडम विदेशी होने के कारण फ्लाप भी हो गयीं तो उनके लख्ते-जिगर तो देशी संस्करण हैं ही। वह पार्टी की बागडोर सम्भाल कर डूबती नैया को किनारे लगा देंगे। अब यार तुम ही बताओ किसका दामन थामूँ?'

हमने उन्हें तसल्ली दी– 'समर्थन के मुद्दे को लेकर परेशान नहीं होना चाहिए। अब इस देश में मुद्दों को लेकर परेशान होने का रिवाज कम हो चला है। तुम तेल देखो तेल की धार देखो। अभी 'अचल एण्ड कम्पनी' में डटे रहो और अपना वर्तमान मजबूत करो, क्योंकि ज्ञानीजन कह गये हैं वर्तमान में जीना चाहिए, वर्तमान सुखमय होगा तो भविष्य स्वतः ही सुखद होगा।

मगर छदम्मीलाल दुःखी होकर बोले– 'यार! तुम कह तो सही रहे हो, मगर इस पार्टी के साथ परेशानी यह है कि इसे सत्ता का अनुभव नहीं है और दूसरी बात यह है कि इसे सत्ता इतने कम दिन के लिए मिलती रही है कि यार लोग सूखे ही रह जाते हैं। ढंग से गला भी तर नहीं कर पाते। ख्वाम-ख्वाह ही दिल्ली के जाल में फँस गये। अपने सूबे में ही भले थे।'

हमने उनकी हौसला-अफजाई करते हुए कहा– 'आप इस बार तो इसी पार्टी में रहो, तब तक दूसरी पार्टी पर मैडम की पकड़ भी मजबूत हो जाएगी और फिर चुनाव कोई कुम्भ का मेला तो है नहीं कि निश्चित समय पर ही होंगे, अगले डेढ़-दो साल में फिर आ जाएँगे, इन्हें बुलाना तो आप लोगों के हाथ में ही है।

समझदारी से काम लो, भविष्य में मौका देखकर मैडम की छत्रछाया में आ जाना। वैसे भी पार्टियाँ मंजिले मकसूद तो हैं नहीं। ये तो मंजिल तक पहुँचने के रास्ते हैं और रास्ता हमेशा सुगम और चहल-पहल वाला ही चुनना चाहिए।

मेरी बातें सुनकर छदम्मीलाल खुश हो गये। चहक कर बोले– 'यार! तू सच्चा दोस्त है, तूने मेरी प्रॉब्लम हल कर दी। अब मेरे दोनों हाथों में लड्डू होंगे। तेरा अहसान उतारने के लिए मैं अगले चुनाव में तुझे भी किसी पार्टी से टिकट दिलवाने की कोशिश करूँगा।'

यह आश्वासन देकर छदम्मीलाल ऐसे खिसके जैसे 'सुलफिया यार... दम लगाकर खिसके।

जातिवाद बनाम राष्ट्रीय चरित्र

भाई जी बेहद संजीदा थे, जैसे उनका कुछ खो गया हो।

मैंने पूछा– 'भाई जी क्या कुछ खो गया है?'

उन्होंने खोई-सी नजरों से देखा और बोले– 'पहले तुम यह बताओ कि तुम कौन हो?'

मैंने अचकचाकर कहा– 'मैं कौन हूँ, इसका क्या मतलब है?' अरे भाई मैं आपका बचपन का दोस्त हूँ।

'मगर तुम्हारी बिरादरी क्या है?'

मैंने उत्तेजित होकर कहा– 'भाई जी! दोस्ती में बिरादरी कहाँ से आई? अब क्या दोस्ती भी बिरादरी देखकर करनी पड़ेगी? एक तरफ तो आप उदारवादी, प्रगतिवादी होने का दंभ भरते हो, दूसरी ओर निरर्थक बातें करते हो? लगता है आपका कुछ कीमती सामान खो गया है अत: संतुलन खो बैठे हो, चलिए दोनों मिलकर ढूँढ़ते हैं।

भाई जी ने पलटकर प्रतिप्रश्न किया– 'ढूँढ़ सकोगे?' फिर भी ढूँढ़ सकते हो तो ढूँढ़ो, मैं 'राष्ट्रीय चरित्र' को ढूँढ़ रहा हूँ, जो आज भ्रष्टाचार, जातिवाद, राजनीति की दलदल में खो रहा है।

मैं चुप्पी लगा गया, आखिर क्या बोलता?

वे आगे बाले– 'हिन्दुस्तान में रहने वाला हर आदमी कायदे से हिन्दुस्तानी होना चाहिए, मगर उन्हें हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई कहकर बाँटा जाता है।'

'मगर भाई जी! फिर भी हम ईद, दिवाली, वगैरा तो मिलकर मनाते हैं।' मैंने प्रतिवाद किया।

भाई जी ने बात काटी– 'त्योहार तक तो ठीक है, पर सच बताओ, चुनाव के समय वोट डालते वक्त क्या हम बँटते नहीं हैं? वोटों की राजनीति क्या इस देश को बर्बाद नहीं कर रही है?'

हाँ भाई जी! अब इस सच को तो मानना ही पड़ेगा, बल्कि अब तो हिन्दुओं को भी सवर्ण और दलित कहकर अलग-अलग जमातें बन दी हैं। इससे भी तसल्ली नहीं हुई तो उन्हें बनिए, राजपूत, जाट, जैन, कायस्थ इतयादि कह-कह कर बाँटने की साजिश की जा रही है। तथाकथित बुद्धिजीवी (?) भी इस साजिश का विरोध नहीं करते हैं। उन्हें तटस्थ रहने की सलाह दी जाती है, बिरादरी का वास्ता दिया जाता है, और ज्यादातर इसे मान भी लेते हैं।

जातिवाद का धीमा जहर दिमागों में घोला जा रहा है। ऐसी तटस्थता का क्या फायदा? भाई जी ने फरमाया।

मुझे लगा मामला कुछ ज्यादा ही गम्भीर है। चोट शायद सीधी दिल पर लगी है। दर्द कुछ ज्यादा ही हो रहा है, मैंने मरहम लगाने की कोशिश की।

पर भाई जी फट पड़े– 'जीवित लोगों की तो छोड़ो कमबख्त! स्वर्गीय महापुरुषों को भी बिरादरी की राजनीति में घसीट रहे हैं।'

'क्या मतलब' मैंने हैरानी से कहा।

वे तमककर बोले– 'अहमक हो! अखबार नहीं पढ़ते? अपने शहर में शास्त्री चौक पर रोटरी वाटिका में महाराणा प्रताप की मूर्ति स्थापना को लेकर छिड़ा विवाद नहीं पढ़ा?

'भाई जी! मेरी समझ में कुछ नहीं आया। लगा लें मूर्ति, इसमें विवाद कैसा?' मैंने बेरूखी से कहा।

अरे भई! शास्त्री चौक पर तो पहले से शास्त्री जी की प्रतिमा लगी है, अब उसी के पास वीर शिरोमणि राणा प्रताप की मूर्ति को लगाने में 'बुद्धिजीवियों' में विवाद हो रहा है। भाई जी ने खुलासा करते हुए कहा। कायस्थों का कहना है कि कायस्थ शिरोमणि शास्त्री जी की प्रतिमा के पास वीर शिरोमणि राणा प्रताप की मूर्ति लगाने का औचित्य नहीं है या तो शास्त्री जी की प्रतिमा रहे या राणा जी की।

भाई जी! खुदा के वास्ते चुप रहिये, यह शास्त्री जी कब से कायस्थों के और राणा प्रताप कब से क्षत्रियों की बपौती हो गये? ये तो राष्ट्रीय थाती हैं, इस देश का गौरव हैं। अब क्या नेहरू, गाँधी, भगतसिंह, बोस आदि को भी जातिवाद का चश्मा लगाकर देखा जाएगा? ठीक है अपनी कौम पर गर्व होना चाहिए, मगर देश कौम से ऊपर है। क्या अब बच्चों को नया इतिहास

पढ़ाया जायेगा? सीमा पर देश के लिए अपनी जान देने वाला जवान क्या केवल बिरादरी के लिए शहीद होता है? नहीं उसका खून महज एक हिन्दुस्तानी खून होता है। जातिवाद की गलत सोच तो देश को रसातल में ले जायेगी भाई जी, इसे रोकना ही होगा।

'मेरे भाई! मैं इसी राष्ट्रीय चरित्र को ढूँढ़ने की कोशिश कर रहा था, भाई जी ने यूँ अपना दर्द उड़ेला। चलो भाई, मिलकर दर्द की दवा ढूँढ़ते हैं, सोये हुओं को जगाने की कोशिश करते हैं।

क्या आप भी हमारी व भाई जी की मदद करना चाहते हैं? यदि हाँ, तो तुच्छ स्वार्थों से ऊपर उठकर 'हिन्दुस्तानी' केवल 'हिन्दुस्तानी' बनने की चेष्टा कीजिए। बाकी सब कुछ स्वयं सँवर जाएगा।

विद्युत कटौती के लाभ

पसीने से लथपथ भाई जी रेलवे स्टेशन की ओर भागे जा रहे थे, कि मुकद्दर के मारे हमसे टकरा गये। हमने कहा– 'अमाँ! तूफान मेल की तरह कहाँ भागे चले जा रहे हो?'

वे आँखें तरेरकर बोले– 'फिर टोक दिया, तुम्हें लाख बार मना किया है, पर तुम हो कि अड़ियल घोड़े की तरह कुछ समझना ही नहीं चाहते हो।'

हम भी ताव खाकर बोले– 'ऐसे कहाँ तुम लाम पर जा रहे हो? लगता है मियाँ मुशर्रफ से सीधे-सीधे दो-दो हाथ करने जा रहे हो?'

भाई जी खीझ कर बोले– 'ऐसी हमारी तकदीर कहाँ? हाँ, वैसे अगर एक बार मुकाबला हो जाता, तो दिल का गुबार निकल जाता, पर फिलहाल मैं पाकिस्तान नहीं लखनऊ जा रहा हूँ।'

अब अचकचाने की बारी हमारी थी। मुँह से निकला– 'यार! मजाक मत करो, तुम तो कभी पड़ोसी शहर में भी नहीं गये, भला लखनऊ जाने की क्या सूझी?'

'मजबूरी है भाई! मजबूरी!' इस शहर के लोग तो मंत्री जी के आदेशानुसार विद्युत कटौती के लाभ नहीं समझते हैं। देखो! तो भला महामहिम के इस शहर के ऊपर इतने उपकार हैं और यहाँ की जनता ने 'थैंक्स' भी नहीं बोला। इसलिए मैं जनता की ओर से मंत्री जी एवं विद्युत विभाग को धन्यवाद देने जा रहा हूँ।

हमने क्रोध में आकर कहा– 'तो इस बात के लिए धन्यवाद बोलना चाहिए या आक्रोश प्रकंट करना चाहिए?'

धन्यवाद भई धन्यवाद! तुम्हें गुस्सा इसलिए आ रहा है, क्योंकि तुम्हें विद्युत कटौती के लाभ नहीं मालूम हैं।

'तो आप ही बता दीजिए।'

तो सुनो!

प्रथम, हम अपनी दिया-बाती की प्राचीन परम्परा को कहीं भूल न जाएँ, इसलिए संध्या के समय बिजली गुल हो जाती है।

दूसरे, सारी रात जब जागरण रहेगा, तो चोरी-डकैती का डर नहीं रहेगा। पुलिस और जनता दोनों ही चैनो-अमन से रहेंगे। पड़ोसी जिले में कटौती न होने के कारण ही चोरी-डकैती, सरियावालों का अधिक डर है।

'पर चोरों-डकैतों का क्या होगा? यह तो सरासर उनके पेट पर लात मारने वाली बात है।'

'तो उन्हें रात के बजाय दिन की पाली में अपना काम करना चाहिए, और लगता है कि मेरी बात उनकी समझ में आ भी गई है, इसलिए फिरौती, अपहरण की वारदातें अधिक हो रही हैं।' भाई जी ने अकड़ कर कहा।

'चलिये, इन्होंने आपकी बात मान ली, पर आम आदमी का क्या होगा? अगर आदमी रात में सोएगा नहीं, तो दिन में काम कैसे करेगा?'

'यहीं तो तुम विद्युत विभाग का दर्शन नहीं समझ पा रहे हो– देखो! रोटी तो ऊपर वाला देता है, आदमी का नसीब देता है। सारे कर्मचारी, नेतागण सभी नसीब की खा रहे हैं। अत: जनता को रोटी भी राम-रहीम ही देगा, तुम चिंता मत करो।'

'पर जनता के स्वास्थ्य पर विद्युत कटौती का बुरा प्रभाव पड़ेगा। गर्मी के कारण यदि बीमारों या बच्चों को कुछ हो गया तो' हमने आशंका व्यक्त की।

भाई जी तमककर बोले– 'बर्दाश्त करने से शरीर की रोग-प्रतिरोधक-क्षमता बढ़ती है। आरामतलबी शरीर को कमजोर बनती है और इसके अतिरिक्त सबसे खास बात यह है कि महामहिम विद्युत विभाग के साथ मिलकर देश की, बढ़ती जनसंख्या पर काबू पाना चाहते हैं। तुम उनकी गूढ़ बातों को न समझकर अपनी मूर्खता सिद्ध कर रहे हो। यदि सौ करोड़ में से चार-छह टपक भी गये तो क्या फर्क पड़ेगा? और आ जाएँगे। वैसे भी जीना-मरना परमपिता के हाथ में है। इसके लिए सांसारिक प्राणी को दोष देना उचित नहीं है।'

अब भाई जी का दर्शन, उनके तर्क मेरे लिए असहनीय हो गये। मैंने

खीझते हुए कहा– 'दो दिन भी ये लोग हमारे जैसे माहौल में रहें, तो पता चल जाएगा।'

मगर भाई जी तसल्ली से बोले– 'इस समय मैं जल्दी में हूँ, ट्रेन का वक्त हो गया है, सच्चाई तो यह है कि तुम्हारा बौद्धिक स्तर अभी विकसित नहीं हो सका है। इसलिए तुम इन लाभों को समझ नहीं पा रहे हो। मैं लखनऊ से आकर समझा दूँगा। तब तक तुम संयम से काम लो, और मुझे हक्का-बक्का-सा छोड़ वे लखनऊ चले गये।

मुलाकातः जूनियर वीरप्पन से

हम सुबह-सुबह जागे तो देखा कि बराबर वाले घर में भाई जी कांधे पर बन्दूक रखे, थोबड़े पर क्लीन शेब्ड की जगह बड़ी-बड़ी मूँछें, डाकुओं की यूनिफार्म पहन तेजी से अपने अहाते में चहलकदमी कर रहे हैं। हमें लगा कोई गम्भीर मसला है, सो हम जल्दी-जल्दी चाय सुड़ककर जा पहुँचे भाई जी के घर।

नजदीक से भाई जी का यह गेटअप देखकर हमें बेसाख्ता हँसी आ गयी लेकिन भाई जी गुर्राये- 'हमे गम्भीरता से लो, यह कोई मजाक का समय नहीं है।'

हमने किंसी तरह हँसी दबाकर कहा- 'भाई जी क्या रात सपने में वीरप्पन दादा को देखा था जो उनके रंग में रंग गये!'

मूँछों पर ताव देकर वे बोले (मूँछ नकली थी, इसलिए ताव जरा धीरे से देना पड़ा)- मैं जूनियर वीरप्पन हूँ।'

'तो आप शहर में क्या कर रहे हैं? जंगल में जाओ, वीरप्पन तो वहीं रहता है। कमबख्त शहर ही खुद उसके पास चला जाए तो बात अलग है, इसे कहते हैं जंगल में मंगल।' हमने मुस्करा कर कहा।

'हमने जंगल की सरकार को प्रार्थनापत्र भेज दिया है, बस स्वीकृति आती होगी।' भाई जी ने बड़े विश्वास से कहा।

'तो फिर परेशानी का सबब?' हमने पूछा।

तो वे मायूसी से बोले- 'मैं यह तय नहीं कर पा रहा हूँ कि दादा ने तो सिने स्टार राजकुमार का अपहरण कर लिया, दूसरे सिने स्टार राजकुमार अल्लाह को प्यारे हो गये, अब में किसका अपहरण करूँ?' सोचता हूँ देवानन्द सही रहेंगे या दिलीप कुमार।'

हमने घबराकर कहा- भाई जी खुदा के वास्ते चुप रहिए। अपने साथ मुझे भी मरवाओगे क्या? ऐसी बातें यहाँ कर रहे हो। दीवारों के भी

कान होते हैं। पुलिस आ गई, तो पकड़ कर छटी का दूध याद दिला देगी।'

भाई जी ठठाकर हँसने लगे– 'यार तुम भी रहोगे लल्लू ही, कहीं अपराध होने से पहले पुलिस पहुँच सकती है? तब तक तो पंछी उड़ जाएगा।'

फिर वे मानो स्वयं से बात करने लगे– 'मेरे ख्याल में देवानन्द ज्यादा ठीक रहेंगे। बुजुर्ग हो गये हैं, और फिर दिलीप कुमार को उठाने में शायद उन्हें तो एतराज हो न हो, मगर धर्मनिरपेक्षता को चोट लग सकती है। भाई लोगों को सियासी मुद्दा थमाने से क्या फायदा? कन्ट्रोवर्सी में नहीं जाना चाहिए।'

हमने मिमिया कर कहा– 'भाई जी! प्लीज आप यह सब मत करो, आप को कौन-सा राजनीति में जाना है? दादा वीरप्पन की तरह? मुफ्त में मारे जाओगे, न माया मिलेगी न राम। क्योंकि आपको बचाने वाला आपका कोई 'गाडफादर' नहीं है। आजकल गुंडागर्दी के लिए भी सोर्स होनी चाहिए। वैसे भी निर्बल की लाठी तो बलहीन होती है।'

मगर मेरी कुछ माँगें हैं जो जायज हैं, लेकिन कोई सुनता नहीं है। क्योंकि आजकल हमारी सरकारें शराफत की नहीं, तमंचों की आवाज पर ध्यान देने लगी हैं, इसलिए मुझे यह रूप धारण करना पड़ा। भाई जी ने स्पष्टीकरण दिया।'

'मगर भाई जी जरा बताइये तो आखिर आपकी माँगें क्या हैं?'

वे बोले– 'मेरी माँग आम आदमी की माँग है, गरीबों को पहले रोजी-रोटी दो, शिक्षा दो। बड़ी-बड़ी बातें फिर करो। हर चीज का राजनीतिकरण बन्द करो। उदारीकरण के नाम पर देश को बेचकर अपनी जेबें मत भरो और सबसे मुख्य बात यह कि उग्रवादियों के सामने घुटने मत टेको।'

'मगर भाई जी आपकी माँग मनवाने का तरीका गलत है। हालाँकि आपकी बातें सही हैं, मगर इससे देश में गलत सन्देश जाएगा। क्या सभी को अपनी माँगें मनवाने के लिए यही रास्ता अख्तियार करना होगा? बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?'

'मैं मानता हूँ कि यह तरीका गलत है।' भाई जी बोले। मगर आज आम आदमी की कोई सुनता नहीं है, तुम ही कोई सही रास्ता बता दो ताकि हम भटकन से बच जाएँ।'

और भाई जी की बातें सुनकर मेरा दिल भारी हो गया मैं निरुत्तर वहाँ से खिसक लिया।
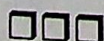
□□□

ढूँढ़ते रह जाओगे!

चुनाव के चार चरण सम्पन्न हो चुके हैं। अंतिम चरण बाकी है। साथ ही शुरू हो चुका है अटकलों एवं भविष्यवाणियों का दौर। भविष्य को लेकर अनेक आशंकाएँ हैं कि भविष्य में क्या होगा, शीघ्र ही अतीत की पुनरावृत्ति या समर्थन का दौर कुछ लम्बा खींच जाएगा? जनता की अब प्रभु से हाथ जोड़कर प्रार्थना है, मौला से दुआ है कि चाहे जिसकी सरकार बने, पर पाँच साल तक चले। जिससे हम जल्दी-जल्दी होने वाले चुनावों से बच सकें। अगर चुनावों का यही हाल रहा तो बच्चों को नया ज्ञान देना होगा कि बेटे ऋतुएँ चार नहीं, पाँच होती हैं और पाँचवीं ऋतु है चुनाव ऋतु। जो कभी भी टपक सकती है।

चुनाव का दिन जैसे-जैसे करीब आता जाएगा, भाई लोगों के दिल की धड़कनें बढ़ती जाएँगी, सपने में भी मंत्रालय ही मंत्रालय दिखेंगे। हुकूमत लाल बत्ती की गाड़ियाँ, कुरसी के दर्शन, साक्षात देवी-दर्शन जैसे होंगे। इनके मिलते ही धूप, धूल, गर्मी, परेशानियाँ ख्वाब की बातें होंगी (जो अगले चुनाव तक भूली-बिसरी यादें होंगी)। अब तक नेतागण जनता के पीछे थे, अब जनता इनके पीछे होगी। अब तक जनता 'जनार्दन' थी, अब जनता 'बेचारी' होगी और जनार्दन होंगे नेता।

अब क्या करें साहब! अपना अपना मुकद्दर है? आप और हम तो जैसे पहले थे वैसे ही अब भी रहेंगे। हाँ शायद कुछ नए टैक्स लगा दिये जाएँगे, थोड़ी महँगाई बढ़ जाएगी, क्योंकि चुनाव और युद्ध में हुए खर्च की क्षतिपूर्ति तो बेचारी जनता ही करेगी न। बोझ से झुकी कमर थोड़ी और झुक जाएगी, मगर हमारे सत्ताधीश कह रहे हैं कि देश का विकास हो रहा है, लेकिन विकास किसका हो रहा है? यह कहने की बात नहीं, समझने की है। यदि देश के विकास की इन्हें इतनी ही चिन्ता होती, तो बार-बार बेमौसम चुनाव ही क्यों होते? चुनाव न हुए बिन बुलाए मेहमान हो गये।

और जैसे बिन बुलाए मेहमानों की आवभगत मन से नहीं होती, वैसे ही नागरिकों में वोट डालने की रुचि भी कम होती जा रही है। खासकर शहरी मतदाता की। यही हाल रहा तो कुछ दिनों बाद की भीड़ की तरह, किराए के मतदाता भी ढूँढ़ने पड़ा करेंगे और तब क्या होगा प्रजातंत्र का?

प्रशासन का चुनाव के दौरान अनुशासन बिल्कुल उचित है। लेकिन क्या इन सख्त कानूनों में थोड़ी-सी रियायत के हकदार बूढ़े, बीमार और महिलाएँ भी नहीं हैं? कम से कम कुछ रिक्शाएँ या सवारी का ही इन्तजाम हो तो वोट प्रतिशत कुछ बढ़ेगा, वर्ना आने वाले चुनावों में मतदाताओं को ढूँढ़ते रह जाओगे।
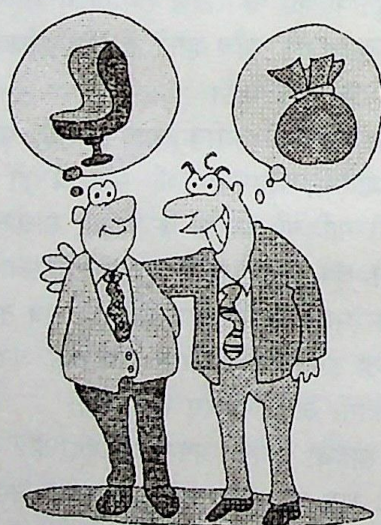
क्या ज़माना आ गया?

'पूर्व दस्यु सुंदरी से पैंतीस हजार लूटे।' यह खबर पढ़कर भाई जी शेयर मार्केट के भाव की तरह उछल पड़े और हाँफते-दौड़ते सीधे रज्जू भाई के घर जाकर ही दम लिया।

उनकी यह हालत देखकर रज्जू भाई घबरा गये, बोले– 'मियाँ खैरियत तो है! क्यों अपनी भौतिक काया को कष्ट देने पर तुले पड़े हो, तुम्हें क्या सी.बी.आई. वाले ढूँढ़ रहे हैं?'

भाई जी घबराहट में बोले– 'भाई जी! चोर के घर चोरी, नहीं-नहीं घर नहीं, सड़क पर चोरी, नहीं चोरी नहीं राहजनी...

रज्जू भाई ताव खा गये– 'मियाँ क्या बहकी-बहकी बातें कर रहे हो! अभी उम्र तो नहीं है, मगर लगता है कि सठिया गये हो। अंट-संट बके जा रहे हो। कभी चोरी, कभी राहजनी... क्या तुम्हारे पीछे इनकमटैक्स वाले पड़े हैं? जो तुम बहक रहे हो।'

भाई जी धम्म से कुरसी पर बैठ गये, बोले– यार! कुछ पानी-वानी पिलाओ और फिर मेरी बात ध्यान से सुनो। सुनकर तुम भी पानी-पानी हो जाओगे। पानी पीकर बढ़ते मंत्रालय की तरह अपनी बढ़ती धड़कनों पर काबू पाकर बोले– 'लगता है तुमने अखबार नहीं पढ़ा कि 'दस्यु सुंदरी लूट ली गयी।' ऊपर से तुर्रा यह है कि लूटने वाले तीन मामूली से छोकरे थे, जिन्होंने तमंचे के बल पर सीधी-साधी श्रीदेवी, नहीं, दस्यू सुंदरी को लूट लिया।'

अब स्प्रिंग की तरह उछलने की बारी रज्जू भाई की थी। बोले– 'क्या यार! वाकई यह तो कलियुगी चमत्कार हो गया। क्या समय आ गया? दूसरों को लूटने वाले सरेआम खुद ही लुट गये। यह सब शराफत की चादर ओढ़ने का नतीजा है, वरना जिसकी एक हुँकार पर अच्छे-अच्छों की सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती थी, वह खुद आज अबला नारी बनकर लुट गयी।'

भाई जी मायूसी से बोले– 'जमाना तो वाकई खराब आ गया है। जब भूतपूर्व डाकू ही सुरक्षित नहीं रहे, तो हमारा क्या होगा कालिये? मैडम

के साथ में तो गनमैन, ड्राइवर आदि भी होंगे, फिर भी मुकाबला न करके माल सरका दिया। तो हम निहत्थों की रक्षा कौन करेगा? या अल्लाह! तेरा सहारा! कह कर भाई जी सिर थाम कर बैठ गये।'

उन्हें दिलासा देते हुए रज्जू भाई बोले– 'भाई जी! तुम बेकार ही डर रहे हो। हमें लूटकर किसी को क्या मिलेगा? खर्चा-पानी भी नहीं निकलेगा। वैसे भी हम तुम तो सदा लुटते रहते हैं। क्योंकि देश की जनता के भाग्य में तो लुटना ही लिखा है। हाँ, लूटने वालों के मुखौटे जरूर बदल जाते हैं। कभी चुनाव के नाम पर, कभी युद्ध के नाम पर, कभी आर्थिक सुधार के नाम पर, अब बचा ही क्या है? और जो बचा-खुचा है वह महँगाई लूट लेगी।'

भाई जी यह सुनकर बोले– 'यार! गुस्सा मत करना, मेरा मन तो इन नौजवानों को शाबासी देने का कर रहा है, कि बेटे तुमने सही लाइन पकड़ी है, लूटो और लूटो इन्हें। सब जनता का ही पैसा है। खाकर डकार भी नहीं लेते। हाँ, बस बेटे! लेकिन इस पैसे से ऐश मत करना। अपने गरीब भाइयों की मदद करना। भूखे को रोटी, नंगे को कपड़ा दे देना।'

रज्जू भाई आपे से बाहर होकर चीखे– 'तेरा दिमाग खराब हो गया क्या भाई! जो बच्चों को गलत शिक्षा दे रहा है। सच्चाई के रास्ते पर चलने के बजाय चोरी-चकारी के रास्ते पर धकेलने का पाप कर रहा है।'

भाई जी भारी आवाज में बोले– 'हाँ यार! मेरा दिमाग खराब हो गया है। मगर तू यह तो सोच कि हमारे बच्चे यह सब क्यों कर रहे हैं? मैं बताता हूँ तुझे। ये पढ़ तो रहे हैं, मगर नौकरी मिल नहीं रही है, पढ़-लिख कर भीख तो माँग नहीं सकते, न रिक्शा चला सकते हैं। फिर क्या करें? भटक रहे हैं। हक माँगने से मिल नहीं रहा है। इसमें ज्यादा दोष हम बड़ों का है, हमारी नीतियों का है, हमारे राजनीतिज्ञों का है। जो अपना घर तो भर रहे हैं, बच्चों की नहीं सोच रहे हैं। युवा पीढ़ी राह से भटक रही है क्योंकि वह देख रही है कि करोड़ों रुपए का घपला करने वाले जब इज्जत के साथ घूम रहे हैं तो फिर उनका ही क्या बिगड़ेगा?

रज्जू भाई, भाई जी को तसल्ली देते हुए बोले– 'यार! दिल छोटा मत कर, सब ठीक हो जाएगा, देखना एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा, जब सबको अपने हक मिल जाएँगे, और उसी दिन के इंतजार में दोनों पलक पाँवड़े बिछाकर बैठ गये। और क्या वह दिन....

□□□
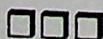
राजनीति में वंशवाद

भाई जी हाँफते-हाँफते रज्जू भैय्या के घर आ धमके, उन्हें देखकर वे ऐसे बिदके जैसे वोट लेने के बाद नेता जनता से। रज्जू भाई ने कहा- 'अमां! खैरियत तो है, क्या शरद पंवार की तरह भागकर आ रहे हो?'

भाई जी बोले– 'देखो तो क्या जमाना आ गया? यह वंशवाद की परम्परा राजनीति में भी घुस गई है। राजनीति न हुई, खानदानी पेशा हो गई। जैसे व्यापारी सोचे कि लड़का व्यापार सम्भाले, वकील चाहे, उसका लड़का वकील बने, डाक्टर चाहता है उसका लड़का डाक्टर बने। वैसे ही ये मंत्री, नेता चाहें कि उनका होनहार लाल (?) मंत्री, नेता ही बने, चाहे वह स्कूल के पीछे पढ़कर जवान हुआ हो। काबिल को गद्दी सौंपें तो ठीक है, मगर नाकाबिल को हम पर थोपने की कोशिश क्यों करते हो? मुई राजनीति न हुई, परचून की दुकान हो गई।'

रज्जू भाई ने चुटकी ली– 'यार तुम्हारा लड़का भी तो यूँ ही इधर-उधर डोलता फिरे है, उसे किसी नेता के साथ चिपका दो ना। नेता बनते ही खानदान का काबिल सपूत बन जाएगा और जब वह लाल बत्ती वाली गाड़ी में घूमेगा तो तेरी यह डेढ़ हड्डी की काया फूलकर गुब्बारा बन जाएगी। नाते-रिश्तेदार तुझे सलाम ठोकेंगे।'

भाई जी एकदम गम्भीर होकर बोले- 'यार! हमारे-तुम्हारे सपूतों का नम्बर तो नेतागर्दी में रौंग नम्बर है। अरे! जब नेताओं के बच्चे ही उनकी गद्दी सम्भालने को उतावले हैं तो आम आदमी की क्या बिसात। इस वंश-वाद रूपी बरगद की छाया में छोटे-मोटे वृक्ष कैसे पनपेंगे?'

रज्जू भाई उनकी हाँ में हाँ मिला कर बोले– 'हाँ! राजनीति में वंश-वाद का दूरगामी परिणाम अच्छा नहीं होता। ये नेताओं के बच्चे तो महलों में पले हैं, विदेशों में और महँगे स्कूलों में पढ़े हैं, भला ये आम आदमी का सुख-दुख क्या समझेंगे? जो आम आदमी के साथ रहे ही नहीं, वे

उनके सपनों को कैसे समझेंगे? ये तो भारत की संस्कृति भी नहीं जानते ठीक से। इनके सम्मोहन से बचना होगा, वरना आने वाले समय में भारत पश्चिमी देशों का नुमाइंदा बनकर रह जाएगा और पद्मश्री, भारतरत्न भी माइकल जैक्सन और बाबा सहगल जैसों को मिलने लगेंगे और भारत की संस्कृति को पश्चिमी संस्कृति का बोझ भी ढ़ोना पड़ेगा।

सेहत का राज़

ऑफिस से थका-माँदा घर पहुँचा, सोचा था कि घर में घुसते ही पत्नी एक कप चाय 'विद स्माइल' पेश करेगी तो सारी थकान छू-मंतर हो जाएगी। मगर जनाब! शायद आजकल हमारी ग्रहदशा कुछ खराब चल रही है। पत्नी बड़े खराब मूड़ में थी। सो थकान को दरकिनार कर चेहरे पर बनावटी मुस्कान लपेटकर हमने प्यार से कहा– 'प्रिये! क्या बात है? आज चाँद उदास क्यों है?'

मगर वे चुप रहीं। अब तो हम वाकई घबरा गये। मन ही मन सोचा, बेटा संभल ले, लड़ाई के समस्त अस्त्र-शस्त्र तैयार हैं, केवल घोषणा होनी बाकी है। पर धैर्य धारण करके बोले– 'किसी ने तुमसे कुछ कहा है? या माँ से झगड़ा हो गया है? अच्छा, नहीं तो फिर, शायद पड़ोसन ने नया हार खरीदा है?'

मगर उन्होंने इनकार में सिर हिला दिया और आँसू भरी आँखों से जैसे ही हमारी ओर देखा तो या अल्लाह! जी चाहा दोनों जहान उन पर कुर्बान कर दूँ। फिर सोचा कि कोमलांगी नारी कों ईश्वर ने इतना बड़ा हथियार क्यों दे दिया? इनके आँसुओं से तो फौलाद भी पिघल जाए, मेरी तो औकात ही क्या है?

इन आँसुओं का सबब क्या है? यह जानना भी जरूरी था। बहुत कुरेदने पर बड़ी मासूमियत से मोहतरमा कहने लगीं– 'ऐसा है जी! किसी पुस्तक में मैंने पढ़ा था कि रोना सेहत के लिए अच्छा होता है। रोने से सारे तनाव दूर हो जाते हैं और डाक्टरों की फीस के पैसे बचते हैं सो अलग। बस इसीलिए मैं सीरियस हो रही थी। पर आपने टोककर सब गड़बड़ कर दिया। अब बार-बार तो आँखों में आँसू नहीं लाए जा सकते हैं।

या मेरे मौला! तो यहाँ रिहर्सल चल रहा था, और मैं गरीब जाने क्या -क्या सोच बैठा था। मुझे लगा पत्नी तो नहीं, शायद मैं रो पडूँगा। पर फिर एक लम्बी साँस लेकर सोचा हम मर्दों के ऐसे नसीब कहाँ। कितना भी बड़ा गम क्यों न हो, उसे सीने में दबाकर घूमना पड़ता है। रोना मर्दानगी के खिलाफ जो है। और वैसे भी महिलाएँ जहाँ रोती हुई भी आकर्षक लगती हैं, वहीं पुरुषों की तो शक्ल और आवाज दोनों ही रोते वक्त भयानक हो जाती

है या कहें हास्यास्पद हो उठती है।

रोना महिलाओं का जन्मसिद्ध अधिकार है। इतिहास गवाह है कि महाभारत की वजह द्रौपदी के आँसू ही थे, और आज भी जाने कितने घरों में महाभारत चलता रहता है। जिसकी वजह काफी हद तक, नारी के आँसू ही होते हैं।

खैर! हमें इस मकड़जाल से बाहर निकाला पत्नी ने। जले पर नमक छिड़कते हुए, वे बोली– 'सुनिये जी! रोने का सबसे सरल उपाय क्या है?'

हमने कुढ़ते हुए कहा– 'क्यों? एकता कपूर के सीरियल तो देखती ही हो, फिर क्यों रोने के तरीके पूछ रही हो?' केवल रोने के लिए ही क्यों, घरों में झगड़ों को बढ़ावा देने के लिए भी, इन मोहतरमा को पुरस्कृत किया जाना चाहिए।'

'छोड़ो जी! आप तो मजाक कर रहे हो। इसमें उस बेचारी की क्या गलती? आखिर कुछ तो बात होगी ही, जो उसके सीरियल इतने लोकप्रिय हो रहे हैं। वह तो वही दिखा रही है, जो समाज देखना चाह रहा है।' पत्नी ने मिस कपूर का फेवर करते हुए कहा।

'हाँ! अभी तक साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। अब शायद बदलते वक्त के साथ टी.वी. सीरियल समाज के दर्पण बन गये हैं।' हमने कराहते हुए कहा।

पर हमारी पीड़ा से बेखबर पत्नी बोली– 'आदर्श-वादर्श छोड़ो। बस हमें रोने के कुछ उपाय बता दो।'

हमने हथियार डालते हुए कहा– 'सुनो! रोने के लिए लम्बे समय तक टिकने वाले मेहमानों को आमन्त्रित किया जा सकता है। खर्चों से महँगाई के इस दौर में रोना शीघ्र ही आ जाएगा। इसके अलावा, तुम्हारे टी.वी.सीरियल तो हैं ही, फिर भी रोना न आये तो किसी कवि की दुख में डूबी कविताएँ पढ़ लेना। यदि फिर भी आँसू सूख गये हों, तो सबसे पुख्ता तरीका है, नेताओं के बयान पढ़ना। इनके कारण देश की जो हालत हो गई है उसे देखकर रोना न चाहो, तो भी रोना आ जाएगा...

बस-बस इतने तरीके काफी हैं। मैं जरा पड़ोसन विमला रानी को दो मिनट में रोने के उपाय और उनसे होने वाले फायदे बताकर आती हूँ, उसे इस विषय पर कल 'महिला समिति' की सभा में स्पीच देनी है, आप मेरे आने तक जरा एक कप चाय बनकर रखना प्लीज, कह कर श्रीमती जी विमला के घर की ओर कूच कर गईं। और हम...

□□□

हाय! बजट, उफ ये बजट

भाई जी कुछ साइक्लोन के से अंदाज में शोर मचाते हुए 'आ गया, आ गया' चिल्लाते हुए सीधे हमारे ड्राइंगरूम में घुस आये। हम तल्लीनता से दूरदर्शन पर आ रहे बजट के प्रसारण का आनन्द ले रहे थे, चौंककर बोले– 'यार कौन आ गया, क्या वाई.टू.के. आ गया?'

भाई जी पान को मुँह में चबाते हुए बोले– 'यार बजट आया और कौन? फिर टी.वी. की ओर देख कर बोले, अच्छा तो जनाब यहाँ शौक फरमा रहे हैं बजट देखने का।'

हमने हारे हुए क्रिकेटर की सी मायूसी से कहा–'यार देखना क्या, इसे तो झेलना है, हर साल शोर मचता है, फिर सब कुछ यथावत चलने लगता है।'

भाई जी बोले– 'सुना है सेलुलर, कम्प्यूटर सस्ते कर दिये गये और गैस, मिट्टी का तेल, राशन के गेहूँ, चावल आदि महँगे।'

'हाँ भाई! देश को नयी शताब्दी में जो ले जा रहे हैं, और ये सब तो बुनियादी जरूरतें हैं नयी सदी की।' हमने सरकार की तरफदारी करते हुए कहा।

'चाहे रोटी न मिले गरीबों को।' गुस्साए भाई जी, बहन जी स्टाइल में गुर्राए। क्या नयी सदी में रोटी की जगह सेलुलर खाएँगे, कम्प्यूटर ओढ़ेंगे? क्या देश आयातित बैटरी से चलकर ही नयी सदी में प्रवेश कर सकता है?'

'भाई जी शांत हो जाइए।' हम अटल जी बनकर बोले। उन्होंने पहले ही संकेत दिया था कि बजट कठोर हो सकता है, फिर तरक्की के लिए समझौते तो करने ही पड़ते हैं।

बासी कढ़ी में आए उबाल की मानिंद भाई जी उबलकर बोले– 'राशन की चीनी, अनाज महँगा, यहाँ तक कि किसानों का खाद भी महँगा,

गैस, पैट्रोल आदि महँगे होने के संकेत और आप हैं कि तरफदारी करे जा रहे हैं, बजट की क्या सरकार आपको कमीशन दे रही है?'

हमने विपक्षी दल की तरह तड़पकर कहा– 'मियाँ! तोहमत मत लगाओ और रही बात कमीशन की, तो कमीशन कह लो या सुविधा शुल्क, आज किस क्षेत्र में नहीं है?

भाई जी हमें पुचकारते हुए बोले– 'यार! इतना गरम क्यों हो रहे हो? बात बजट की हो रही थी और तुम न जाने कहाँ भटक गये? मैं तो यह चाहता था कि बजट में गंरीबों का, किसानों का हित सर्वोपरि होना चाहिए, लेकिन होता इसका उल्टा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, विदेशी व्यापारियों के स्वागत में पलक पाँवड़े बिछाने के बजाए अपने देश के कुटीर उद्योग –धंधों को प्रोत्साहन देना ज्यादा जरूरी है। क्योंकि अपना घर भरा-पूरा हो तभी दूसरों का भला लगेगा। रही बात मध्यम वर्ग की, तो उसका क्या भला क्या बुरा? वह तो बेचारा जन्मा ही पिसने के लिए है। चाहे सरकार कोई भी हो, मार उसी पर पड़नी है। क्योंकि वह वर्ग समर्थ न होने पर समर्थ होने का दिखावा जो करता है।

हमने उनकी हौसला अफजाई करते हुए कहा– 'भाई जी! हमारी तो दुआ है कि भगवान हम सबको इस आघात को हर साल की तरह झेलने की ताकत दे।' तब तक हमारी इस बहसबाजी को विराम देने के लिए अन्दर से चाय आ गयी और हम आम हिन्दुस्तानी की तरह सारे गम भुला कर चाय की प्याली में कुछ इस अदा से डुबकी लगाने लगे–

दुनियाँ में हम आये हैं तो जीना ही पड़ेगा
जीवन है अगर जहर तो पीना ही पड़ेगा।

□□□

नेता, टिकट और गिरगिट

भाई जी आजकल बहुत व्यस्त हैं। चुनाव सिर पर जो आ गये हैं। वे पार्टी के सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं। अब खुदा के वास्ते यह मत पूछिये कि कौन-सी पार्टी के? क्योंकि जो भी पार्टी थोड़ी-सी इज्जत बख्श दे, यानी टिकट की उम्मीद जगा दे, बस वे उसी के वफादार हो जाते हैं। अब एक पार्टी से चिपके रहना तो 'आउट ऑफ फैशन' हो गया है। अभी पिछले चुनाव में भाई जी 'काग-दल' के कर्मठ कार्यकर्त्ता थे, लेकिन वहाँ उनका दम घुटने लगा था। इसलिए अब वे खुली हवा में साँस लेने के लिए 'भेड़िया दल' में शामिल हो गये हैं। हालाँकि अभी उन्हें टिकट मिला नहीं है, पर उम्मीद पर दुनियाँ जीती है। यदि यहाँ भी टिकट नहीं मिला तो फिर उनका हृदय परिवर्तन हो सकता है।

खैर फिलहाल पार्टी की सदस्यता ग्रहण करके गाजे-बाजे के साथ कुछ चमचों के साथ भाई जी गाड़ी पर नया झण्डा लगाकर ऐसे अकड़ते हुए आ रहे हैं जैसे उन्होंने मियाँ मुशर्रफ को ही जीत लिया हो।

मैं अपने बेटे के साथ बाजार जा रहा था। मेरा बेटा उन्हें देखकर चिल्लाया- 'पापा! पापा! नेता अंकल जा रहे हैं।'

'हाँ बेटा' मैंने कहा।

बच्चे ने कुछ सोचकर फिर पूछा- 'पर पापा! पिछले चुनाव में इनकी गाड़ी पर दूसरे रंग का झण्डा था, आज यह नया क्यों लगाया है?'

'क्योंकि बेटा इन्होंने पार्टी बदल ली है।' मैंने उसे समझाया।

'पापा! नेता अंकल इतनी जल्दी-जल्दी पार्टी क्यों बदलते हैं? क्या इनका भी ट्रांसफर होता है?' बेटे ने सवाल दागा।

'नहीं बेटा! ये अपने मन से पार्टी बदलते हैं। इनका ट्रांसफर नहीं होता। इन्होंने चुनाव में एम.एल.ए. का टिकट पाने के लिए पार्टी बदली है।' मैंने उसकी जिज्ञासा शांत की।

पता नहीं आज बंटी को क्या हो गया था, सो उसने फिर पूछा– 'एम.एल.ए. क्या बहुत बड़ा होता है? क्या उसके लिए बहुत पढ़ना होता है?' उसने अपने भारी भरकम स्कूल बैग के बारे में सोचकर कहा।

'हाँ बेटा! पढ़ना तो पड़ता है।'

'पर पापा! आप तो अभी उस दिन कह रहे थे कि क्या जमाना आ गया, अमुक पार्टी ने चुनाव में अपराधियों को टिकट दे दिया, फिर पढ़ना क्यों जरूरी है?'

मेरी समझ में नहीं आया कि मैं उसे क्या जवाब दूँ, सो चुप हो गया। मगर वह आज मानो यक्ष बन गया था, उसने फिर पूछा– 'पार्टी बड़ी या टिकट?' फिर कुछ सोचकर खुद ही बोला– 'शायद टिकट ही बड़ा होता होगा, तभी तो नेता अंकल कपड़ों की तरह बार-बार पार्टी बदलते हैं।'

'हाँ बेटा, तुम ठीक कह रहे हो।' मैंने अपनी जान बचाई।

'अच्छा पापा, पर टिकट से बड़ा तो देश होता है न?'

'हाँ बेटा, मैंने अपने होनहार लाल को पुचकार कर कहा।

'तो पापा! फिर नेता अंकल यह बात नहीं जानते क्या?'

'जानते तो हैं बेटा! पर स्वार्थों के कारण समझना नहीं चाहते।' मैं अब उसके सवालों से ऊब कर सोच रहा था कि एक बच्चा इनके चरित्र को समझ रहा है और ये नेता कौन-सा आदर्श बच्चों को देना चाह रहे हैं?

तभी अचानक पीछे से एक गिरगिट कूदकर सामने आ गया। बेटा डर गया, फिर कुछ सोचकर कहने लगा – 'पापा! गिरगिट रंग बदल सकता है न?'

'हाँ बेटा! सो तो है।' मैंने कहा।

बच्चा अचानक ताली बजाकर हँसने लगा और बोला– 'पापा! फिर नेता अंकल और गिरगिट में क्या अंतर है?' एक रंग बदलता है, एक पार्टी।

मुझे कुछ उत्तर देते नहीं बना। मैं आज भी उसका उत्तर खोज रहा हूँ, यदि आपके पास हो तो बताइये। उसकी शंका के समाधान के साथ-साथ शायद देश का भी कुछ भला हो जाए।

☐☐☐

कुत्ता-पुराण

गुलाबी जाड़ों की एक खुशनुमा सुबह-सुबह, गपशप और एक कप गर्मा -गर्म चाय की दरकार में अपन राम भाई जी के घर जा धमके। घर में प्रवेश करते ही जोर-जोर से पूजा करने की आवाजें आ रही थी और पुजारी थे परम आदरणीय भाई जी। अब अचकचाने की बारी मेरी थी। भाई जी और कर्मकांडी पूजा? भाई जी नास्तिक नहीं हैं, पर कर्मकांडी पूजा भी वह नहीं करते। खैर ध्यान से सुना तो कुछ आवाजें कानों में पड़ी- 'हे प्रभु! यदि अगले जनम में मानव योनि मेरे भाग्य में न हो तो कोई गम नहीं है। दीनदयाल! बस इतनी दया करना उस स्थिति में आप मुझे कम से कम किसी मंत्री का कुत्ता ही बन देना...

अभी भाई जी का प्रलाप चल ही रहा था कि मैं उन्हें झकझोरते हुए गुर्राया- 'बस कीजिए बस! दुनियाँ मानव योनि के लिए तरसती है और एक आप हैं न जाने क्या अनाप-शनाप प्रलाप किये जा रहे हैं?'

वे तुरंत मेरी बात काट कर बोले- 'अबे घोंच्चू! तुझे पता नहीं है? मंत्रियों के कुत्तों के ठाट-बाट भी मंत्रियों की तरह निराले होते हैं। मंत्री महोदय खुद उनके नखरे उठाते हैं, उनके जन्मदिन मनाते हैं और वैसे भी भाई मेरे, गरीब-गुरबा होने से किसी अमीर का कुत्ता बनकर मुर्ग मुसल्लम उड़ाना बेहतर है।'

'भाई जी! आप शायद सठियाने लगे हो, तभी आप उल्टी-सीधी बातें कर रहे हो, पर यह श्वान योनि अचानक आपको इतनी प्रिय कैसे हो गई? जरा हम भी तो सुनें। मैंने जोर से कहा।

तो उन्होंने खुलासा किया- 'देख भइये! पहली बात यह है कि यह चौपाया डाँटने-डपटने का बुरा नहीं मानता। बेकदरी करने पर भी बेवफाई नहीं करता है। जरा-सा पुचकारते ही फिर से दुम हिलाने लगता है।'

मैंने प्रतिवाद किया- 'यह खासियत तो चमचों में भी होती है, बल्कि ये बेचारे तो बिन पूँछ के भी दुम हिलाकर दिखा सकते हैं।'

'रे मूढ़मति! सो तो ठीक है, पर इस आदमजात का क्यां भरोसा? जाने

किस मोड़ पर दगा दे जाए, किस मोड़ पर तन्हा छोड़ दे।'

'हाँ भाई! यह तो ठीक है, मैंने भी सुना है कि धर्मराज युधिष्ठर के आखिरी वक्त में केवल उनका कुत्ता ही उनके साथ था, सब बंधु-बांधव पीछे छूट गये थे।

भाई जी रहस्यमयी आवाज में फुसफुसाये– 'यार! जरा कान पास ला, तो एक राज़ की बात बताऊँ, मगर किसी से कहना मत।'

और मैं खिसक कर, समर्थन पाई सरकार की मानिंद उनके बाजू में आ गया।

उन्होंने फरमाया– 'अभी पिछले दिनों एक नेता जी मिले, बेचारे व्यथित हृदय से फरमा रहे थे, राजनीति बड़ी कुत्ती चीज हो गई है, जैसे ये प्राणी हड्डी पर लपकता है ऐसे ही भाई लोग कुरसी पर।'

हड्डी और कुरसी के इस अद्‌भुत साम्य पर मुझे बेसाख्ता हँसी आ गई। और मैं कहने लगा– 'भाई जी! न जाने क्यों ऐसा लग रहा है कि भविष्य में बच्चों से गाय के बदले कुत्तों पर निबंध लिखवाये जा सकते हैं?'

यह सुनकर भाई जी गंभीर चिंतन में डूब गये। मुझे लगा वे निबंध के बारे में ही सोच रहे हैं, सो उनकी मदद करने के लिए मैं उन्हें निबंध की प्रस्तावना समझाने लगा–

हमारे देश में कुत्तों का काफी महत्त्व है, कुत्ते कई प्रकार के होते हैं, उनमें से कुछ पालतू होते हैं, कुछ जंगली। कुछ काटते हैं कुछ केवल भौंकने वाले होते हैं। हमें केवल पालतू कुत्तों को ही पालना चाहिए। ये सभ्य होते हैं। हमें नुकसान नहीं पहुँचाते हैं। कुत्ते नामक इस प्राणी के चार पैर होते हैं। जिन पर सदा ये मालिक की सेवा में खड़े रहते हैं। इनकी दो आँखें और एक अदद पूँछ भी होती है, जो केवल अपने आका के सामने चौबीसों घंटे हिलाने अर्थात् हाँ में हाँ मिलाने के काम आती है।'

अभी प्रस्तावना खत्म नहीं हो पायी थी कि भाई जी गुर्राये– 'चुप अहमक! सारा निबंध क्या तू ही लिख देगा?'

और मैं चोट खाये विपक्ष की तरह सीरियस हो गया।

मुझे चुप देखकर भाई जी बेताल की सी मुद्रा में बोले– 'चल समय बिताने के लिए तुझे एक किस्सा सुनाता हूँ। ध्यान से सुनकर निर्णय देना कि भूखों मरना अच्छा है या मेरी बात पर विचार करना। किस्सा इस प्रकार है–

'सुयोग से एक बार विधानसभा में जाने का मौका मिला, जहाँ अहम

मुद्दे पर वार्तालाप चल रहा था। विषय था– 'टैक्निकल एजुकेशन और हमारा प्रदेश।' गंभीर वार्तालाप चल रहा था, पर मेरे पास बैठे दो विधायक महोदय इससे भी अधिक संजीदा वार्तालाप में इतने मग्न थे और उन तक शायद मुख्य-मंत्री की आवाज भी नहीं पहुँच पा रही थी।

मुख्यमंत्री जी कह रहे थे– 'हालाँकि इस क्षेत्र में हमारा प्रदेश काफी तरक्की कर रहा है, लेकिन अभी इस दिशा में हमें काफी कुछ करना है...

तभी पहले विधायक दूसरे के कान में कहने लगे- 'यार! तुझे पता नहीं है, कल रात से 'बंटी' की तबियत बहुत खराब है।'

दूसरे विधायक चिंतित होकर बोले– 'डाक्टर को दिखाया?'

'हाँ यार डाक्टर ने कहा है, उसे 'वायरल फीवर' हो गया है।'

मुख्यमंत्री जी– 'यदि टैक्निकल एजुकेशन' की प्रगति के लिए आपके पास कुछ अमूल्य सुझाव हों, तो बताइये। मित्रो! हम उन पर अवश्य विचार करेंगे...

दूसरा विधायक- 'शायद बंटी भीग गया। हाय! बेचारा कितनी तकलीफ में होगा। उसे हल्का खाना ही देना, दूध, ब्रैड बगैरा।'

पहला विधायक– 'वह तो कुछ भी नहीं खा रहा है। यहाँ तक कि अपनी प्रिय चाकलेट भी, बस कूँ-कूँ किये जा रहा है।'

ऐसा कर तू उसे डाक्टर झुनझुनवाला को दिखा, ये 'डाग स्पेशलिस्ट' हैं, मैं अपने जैकी को केवल उन्हीं को दिखाता हूँ। हाँ, फीस एक हजार है, पर जैकी की जान से कीमती तो नहीं।'

मुख्यमंत्री जी– 'मित्रो! क्या है कि जितनी उन्नति इस क्षेत्र में अमेरिका ने की है उतनी हम नहीं कर पाये हैं, क्योंकि हमारा युवावर्ग अधिक सुविधाओं की चाह में यहाँ से पलायन कर रहा है। इसकी रोकथाम के विषय में आप क्या कहते हैं?...'

पहला विधायक– 'कितना ध्यान रखते हैं उसका, फिर भी जाने कैसे बीमार हो गया?'

दूसर विधायक– 'मेरा जैकी तो केवल 'फ्रैश चिकन' खाता है और उसकी खास बात यह है कि घर में कभी गंदगी नहीं करता। सू-सू या शिट के लिए कूँ-कूँ करता है, तो हम उसे खोल देते हैं और वह पड़ोसी के घर के सामने निपट आता है।'

अच्छा! जैकी तो वाकई 'जीनियस' है, लगता है हमसे 'बंटी' के लालन-पालन में कुछ कमी रह गई है। तभी वह घर गंदा रखता है, उसे 'मैनर्स' सिखाने होंगे। पहले उसकी तबियत तो ठीक हो।'

भगवान सब ठीक करेंगे, दूसरे ने पहले को समझाया तो उन्हें बड़ी तसल्ली मिली।

मुख्यमंत्री जी– 'मित्रो! हमने 'टैक्निकल एजुकेशन' पर आपके विचार सुने, हम उन पर गौर करेंगे, शेष विचार-विमर्श कल होगा।'

और सभा का समापन हो गया। देश की चिंता छोड़कर सभी अपना-अपना दुखड़ा रोने लगे।

यह किस्सा सुनकर समझ नहीं सका कि हँसू या रोऊँ। फिर भी बेसाख्ता मुँह से निकल ही गया– 'भाई जी! अब आपका दर्द मेरी समझ में आ रहा है कि जिस देश में गरीब के बच्चे भुखमरी से मर रहे हैं, वहीं अमीरों के कुत्ते दूध-ब्रैड, चिकन उड़ा रहे हैं। खैर! अपना-अपना भाग्य।

चूँकि मैं विक्रमादित्य नहीं हूँ, इसलिए भाई जी के प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका।

बोझिल मन से बगैर चाय के भाई जी के घर से निकल पड़ा। बाहर सेठ अमीरचंद की पत्नी 'विलियम' को घुमा रही थीं। उनकी स्थूल काया देखकर समझ नहीं सका कि वे 'विलियम' महोदय को घुमा रही हैं या 'विलियम' उन्हें घुमा रहे हैं। तभी उनकी गुहार सुनाई दी– 'विलियम स्टाप', आई से स्टाप प्लीज।'

पर 'विलियम' महोदय उनकी 'प्लीज' को अनसुनी कर जंजीर छुड़ाकर पड़ोसी 'मिस रानी' से दोस्ती करने के लिए दौड़ लगा चुके थे। सेठानी जी उसके पीछे दौड़ रही थीं। और मेरी नजर उनके पीछे... मैं अपनी हँसी रोक नहीं पा रहा था।

मंत्री बनवा दो, बड़े सबाब का...

भाई जी सुबह की चाय पीते-पीते अखबार पढ़ रहे थे, अचानक बड़बड़ाने लगे, 'बस बहुत हो गया, अब बर्दाश्त नहीं होता।'

'क्या हुआ, भाई जी क्या बर्दाश्त नहीं कर पा रहे है? मैंने बेजारी से कहा।

वे उल्टे मुझे ही उलाहना देने लगे– 'मियाँ! तुम रहते कहाँ हो आजकल, अखबार नहीं पढ़ते क्या? कुछ पता भी है कि मुख्यमंत्री जी की जान आजकल कितनी आफत में है? बेचारे दुविधा-ग्रस्त हैं।'

'ओ हो! तो आप इसलिए परेशान हैं कि मंत्रीमंडल का विस्तार तो हो गया, मगर रस्साकशी अभी भी चल रही है, पर इससे मुख्यमंत्री जी क्यों परेशान हैं? परेशान तो उन्हें होना चाहिए, जिनकी टाँय-टाँय फिस्स हो गई।' मैंने कहा।

वे बिफर गये। रहोगे तुम अहमक ही। मंत्री बनाने के लिए दबाव तो आखिरकार उन पर ही पड़ रहा है न।

मैंने उनके सुर में सुर मिलाकर कहा– 'सो, तो आप ठीक फ़रमा रहे हो। पर भाई जी! उन गरीबों की भी सोचो जिन्हें कुछ नहीं मिला। जो मंत्री बन गये, उनकी तो लाटरी लग गई। वाह-वाह लाल बत्ती की गाड़ी में महानुभाव! कुछ ऐसी कातिल-सी अदा में बैठे हैं, जैसे मंत्री बनकर ही अवतरित हुए थे और जनता भौंचक्की-सी रास्ता दे देती है।'

भाई जी गुर्राये– 'तुम्हें इनकी पड़ी है, जिसके जैसे करम, प्राणी को वैसा ही भोगना पड़ता है। कुछ अच्छे करम किये होंगे तभी तो मंत्री बने हैं...

मैंने उनकी बात काट कर कहा– 'भाई जी! कल एक विधायक महाशय मिले थे। बेचारे बिसूर रहे थे, कि मुख्यमंत्री जी ने जिन्हें मंत्री बनाया है उनमें कौन-से सुरखाब के पर लगे थे? पता नहीं यह मुख्यमंत्री जी कौन से ब्रांड का चश्मा लगाते हैं। वरना जो मंत्री बने हैं मेरी धोती

उनकी धोती से ज्यादा सफेद है।

'पर भइये! सोचो, उन्होंने कहा– 'बेचारे कहाँ तक मंत्री बनाएँगे? इतने बना दिये, ज्यादा के लिए कहाँ से इतनी कारें, सुविधाएँ आएँगी? क्या सड़कों पर तम्बू लगाकर बैठेंगे मंत्री?'

'क्यों उसमें क्या परेशानी है? जनता तो है अपना खून चुसवाने के लिए, बना लो थोड़े से और मंत्री। दुआ देंगे, बस थोड़ी-सी महँगाई बढ़ेगी, थोड़े से टैक्स बढ़ेंगे। जन्म से गूँगी, बहरी, अंधी जनता है। आखिर बिगाड़ ही क्या सकती है?' मैंने ताव में आकर कहा।

'हाँ मियाँ! सो तो है। जनता जाय भाड़ में। तुम जरा एक विधायक महोदय का किस्सा सुनो! बेचारे मंत्री तो बन नहीं सके, मगर नींद में बड़-बड़ा रहे थे– 'प्रिये! तुम कहाँ हो? मैं जन्मों से तुम्हें ढूँढ़ रहा हूँ। तुम हो कि 'पारो' बनकर मुझे छल रही हो। तुम्हें छूने को, पाने को मैं तरस गया।'

इनका विलाप सुनकर पास सोई पत्नी जग गईं। तमक कर बोली– यह मुई 'पारो' कौन है? करमजली का मुँह नोच डालूँगी।'

वे पहलू में दिल दबाकर बोले– 'भाग्यवान! उसे गाली मत दो, वह तुम्हारी सौतन नहीं सहेली है। अरे! मैं तो 'कुर्सी रूपी पारो' की बात कर रहा था। तुम जाने क्या समझ बैठीं।

'तब ठीक है। ढूँढ़ो-ढूँढो, मैं तुम्हें डिस्टर्ब नहीं करूँगी और वे 'जुदाई' की श्रीदेवी की तरह नोटों के 'बिस्तर' का सपना लिए सो गईं।

क्या वाकई, यह स्थिति हो गई है? हम सिर पकड़कर बैठ गये।

'हाँ भई, विधायक की पत्नी मेरी पत्नी की सहेली हैं, सो वही बता रही थीं।'

उन्होंने कहा– 'भाई जी! अगर मुख्यमंत्री जी के दरबार में आपकी कोई सोर्स हो तो लगवा दो। बेचारा गरीबदास भी मंत्री बन जायेगा। सारी शर्तें मानने को तैयार है।'

और हम दोनों गरीबदास के लिए 'सोर्स' ढूँढ़ने चल दिये। यदि लखनऊ या दिल्ली दरबार में आपकी भी सोर्स हो तो हमें सूचित करना। गरीबदास को 'कुर्सी' मिलेगी आपको सबाब मिलेगा।

□□□
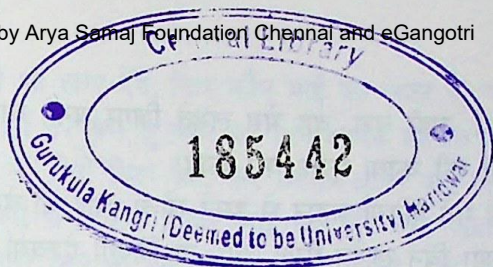
तलाश जारी है...

हम सुबह-सुबह सोकर उठे ही थे कि दरवाजा भड़भड़ाते हुए भाई जी घर में तूफान मेल की तरह दाखिल हुए। उनके चेहरे पर बदहवासी उड़ रही थी। कदम डगमगा रहे थे। हमने उन्हें संभालकर पुचकारते हुए पूछा– 'मियाँ क्या बात है? क्या तुम्हारे गाँव में बमबारी होने वाली है?'

उन्होंने हमारी बात सुनी-अनसुनी कर दी और अपने लंबे से कुर्ते में छुपाया हुआ बड़ा-सा कटोरा निकालकर बेसुरे स्वर में तान देनी शुरू कर दी– 'दे! दे! दाता के नाम पर दे दे!! सिर्फ चंद रुपयों का सवाल है, तुम पर खुदा की रहमत होगी।'

हमने उन्हें फटकार लगाते हुए कहा– 'मियाँ अल्लाह का दिया सब कुछ तो आपके पास है, फिर यह भीख माँगने की नौबत कहाँ से आ गयी?'

मगर वे अपनी धुन में मस्त थे। अभी तक तो वे रुपये माँग रहे थे, अब स्वयं को अदनान सामी समझ, उन्होंने ठुमक-ठुमक कर डांस भी शुरू कर दिया– 'मुझको भी तू लिफ्ट करा दे, बस पचास लाख डालर ही लिफ्ट करा दे, ऐसे-वैसों को दिया है, मुझको भी तू लिफ्ट करा दे।'

अब हमारे सब्र का बाँध टूट चुका था। सो उन्हें झकझोर कर बोले– 'भाई जी! होश में आ रहे हो या जूता सुँघाऊँ? क्या सपने में अभिताभ बच्चन से मुलाकात हो गयी थी, जो करोड़पति बनने का ख्वाब देखने लगे?

वे मायावती की तरह आँखें तमकाकर बोले– 'अरे! यह अभिताभ क्या चीज है? यह क्या मुझे करोड़पति बनाएगा? पहले अपना सारा कर्जा तो चुका दे, मेरी तो बुश से मुलाकात होने वाली है।'

'कौन बुश? हमने अचकचा कर कहा। कहीं तुम अमेरिका के राष्ट्रपति की बात तो नहीं कर रहे हो?'

'हाँ, हाँ, वही बुश, वह मेरा लख्ते जिगर बनने वाला है' भाई जी ने डेढ़ पसली की काया फुला कर कहा।

यह तो गये दुनियाँ जहान से हमने सोचा, भाई जी बेखुदी में बड़बड़ा रहे थे– 'काश! बिन लादेन मिल जाए, तो जिंदगी ऐश्वर्या बन जाय। चारों ओर पैसा ही पैसा होगा और मैं मर्सडीज में बैठकर यूरोप घूमूँगा, साथ होगी हालीबुड की हीरोइनें, रातें पेरिस में, दिन अमेरिका में गुजरेगा। लंच प्रिंस चार्ल्स के साथ, डिनर बुश के साथ। भाई जी को ख्वाबों की दुनियाँ में छोड़कर हम सोचने लगे कि यह पचास लाख डालर की कहानी क्या है?

अचानक हमारे दिमाग में आया कि जरूर भाई जी ने टी.वी. न्यूज में यह सुना होगा कि अमेरिका ने बिन लादेन के ऊपर पचास लाख डालर का इनाम रख छोड़ा है, सो भाई जी उन्हें हथियाने की फिराक में हैं। अब हमें उन पर गुस्सा नहीं, तरस आने लगा, कहाँ बिन लादेन और कहाँ ये भाई जी? एक फूँक मारो तो उछल कर खम्भे पर जा टिकें, मगर जिगर देखिये! बिन लादेन को पकड़ेंगे?'

हमने स्थिति का आनन्द लेते हुए कहा भाई जी नेक ख्याल है, मगर यह बिन लादेन है कहाँ? उसके पीछे तो सारी दुनियाँ की खुफिया ऐजेंसी लगी हैं, मगर कोई सुराग तक नहीं मिला। वह कोई लालीपॉप तो है नहीं, जिसे आप गप्प से मुँह में रखकर चूस लोगे, अरे! वह तो अमेरिका से ही नहीं चूसा जा रहा है।

यह सुनकर भाई जी का थोबड़ा अल्पमत वाली सरकार की तरह लटक गया, फिर कुछ सोचकर वे खुशी से नाचने लगे 'बल्ले-बल्ले मिल गया, मिल गया, मुझको बिन लादेन मिल गया।'

हमने घबराकर इधर-उधर देखा तो कहीं कोई नहीं था। तो हमने कहा– 'पर भाई जी! हमें तो नहीं दिखा।'

'खड़ा तो है मेरे सामने।' उन्होंने अकड़कर कहा।

यह सुनकर हमें जूड़ी चढ़ गई, हमने झाँककर चारपाई के नीचे देखा कि कहीं अमेरिका से बचने के लिए वह हमारी खटिया के नीचे तो नहीं छुपा बैठा है? मगर वहाँ तो चिड़िया का बच्चा भी नहीं था।

हमें हैरान परेशान देख, भाई जी कान में फुसफुसा कर बोले– 'ऐसा करते हैं, चंद दिनों के लिए तुझे ही बिन लादेन बना देते हैं। तेरे पगड़ी बाँध

देते हैं एवं दाढ़ी भी लगा देंगे, फिर कौन माई का लाल है, जो कहेगा कि तू बिन लादेन नहीं है? बस तू स्वयं को बिन लादेन साबित कर देना। फिर जो पैसे मिलेंगे न, दोनों मिल-बाँट कर आधा-आधा कर लेंगे।

हमने गुस्से में कबाब होकर भाई जी की ओर देखा तो वे दाढ़ी पगड़ी लिये हमारी ओर ही आ रहे थे। हमने किसी तरह धकेलकर भाई जी को घर से बाहर निकाला और झट से दरवाजा बंद करके राहत की साँस ली।

बाहर भाई जी शोर मचा रहे थे, तू कैसा दोस्त है रे! जो दोस्ती में लादेन भी नहीं बन सकता? अगर तू मेरी बात मान लेता तो तेरा क्या बिगड़ जाता। बुश तुझे खा थोड़ी ही जाएगा, तुझे पुचकार कर रखता, रोटी-शोटी भी खिलाता, फिर तेरा क्लोन बनवाता, ताकि भविष्य में 'बिन लादेन' की जरूरत पड़ने पर काम आ जाए।

मगर हमने कानों में अफगानिस्तान की तरह रूई ठूँस ली। बाहर भाई जी चिल्ला रहे थे– 'जा जा, मुझे तेरी परवाह नहीं है, मैं किसी और को 'बिन लादेन' बनाकर पेश कर दूँगा, और भाई जी 'बिन लादेन' को ढूँढ़ने के मुकाम पर निकल पड़े। कुछ इस तर्ज पर छुपने वाले सामने आ, छुप-छुप कर मेरा दिल न जला।'

जरा बचकर रहिएगा, कहीं भाई जी आपको ही बिन लादेन बनाकर पेश करने की जुर्रत न कर बैठें। साजो-सामान तो उनके पास है ही। बस आपकी हाँ की देर है। आखिर पचास लाख डालर का सवाल है।

आरक्षण बनाम ततैयों का छत्ता

चौधरी साहब मूँछों को ताव देते हुए कुछ अलग ही अकड़ में जा रहे थे कि रास्ते में भाई जी से टकरा गए। भाई जी लगे बड़बड़ाने 'देख कर नहीं चल सकते? सड़क पर ऐसे चल रहे हैं मानो सारी सड़क आरक्षित करा रखी हो।'

यह सुनकर चौधरी साहब उछल पड़े 'अमाँ तुम्हें कैसे पता, मैं तुम्हें यही तो खुशखबरी सुनाने आ रहा था कि राजस्थान और यू.पी. में तो चौधरियों (जाटों) को आरक्षण मिल गया है और जब वहाँ मिल गया तो आग तो सब जगह लगेगी, क्योंकि चिंगारी भड़कनी तो शुरू भी हो गयी है।

भाई जी ने कहा– 'मगर तू क्यों कूद रहा है? तू क्या अब इस उमर में कलक्टर बनना चाहे है? और वे तेरे बालक जो पढ़ते ही नहीं हैं, वे इसका क्या करेंगे? दूसरे आरक्षण मिलने से धरती क्या ज्यादा पैदावार देने लगेगी? उसके लिए तो मेहनत ही करनी पड़ेगी। अरे! हम किसानों को तो अब भी वही गेहूँ, गन्ने का भाव मिलेगा। हाँ बीज, खाद आदि में कुछ रियायत मिलती तो कुछ लाभ हो जाता।'

चौधरी साहब बोले– 'हाँ भाई! तेरी यह बात तो हमारी समझ में भी आवे है कि पहले जो गाँव के लड़के थोड़ा-बहुत पढ़ लेते, वे अब इस चक्कर में और भी ना पढ़ेंगे। पहले पैसे दे दिला के सिपाही ही बनना चाहे थे, अब आरक्षण लेकर कलक्टर बनने की सोचेंगे। रहे बाकी पढ़ने-लिखने वाले, सो उन्हें इस बैसाखी की जरूरत ही ना है। वे अपने आप ही पढ़ लिख के बड़े अफसर बन जावे हैं, भगवान ने बुद्धि तो दी ही है।'

भाई जी बोले– 'चौधरी! तू मुझे एक बात बता कि क्या यो आरक्षण पिछड़ों को ही मिले है और पिछड़ों की परिभाषा क्या है? कहीं ऐसा तो ना है कि सत्ता की रोटी सेकें की खातिर इसके बहाने अपने वोट पक्के किये जावें हैं।'

चौधरी साहब लंबी साँस लेकर बोले– 'भाई! तन्ने तो दुखती रग पकड़ ली। सच्ची बात तो कड़ुवी होवे है। मगर सच्ची इन नेताओं को किसी भी बिरादरी से कोई प्यार-व्यार नहीं है। इन्हें तो अपना उल्लू सीधा करना ही है, वरना आरक्षण आर्थिक आधार पर दिया जाता, जाति पर नहीं। यह तो आरक्षण के बहाने आपस में दूरी पैदा करने की साजिश करतें हैं, जबकि एक ओर अंतर्जातीय विवाह धड़ल्ले से हो रहे हैं, क्योंकि उच्च शिक्षारत बच्चे जाति-पाति का भेद-भाव छोड़कर दूसरे बिरादरियों में शादी कर रहे हैं।

भाई जी माहौल की गंभीरता दूर करने के लिए चुटकी लेते हुए कहने लगे– 'यार क्यों उदास होते हो? धीरे-धीरे सारी बिरादरियों को ही ये आरक्षण दे देंगे, और जो बाकी बचेंगे, तो उनका आरक्षण खुद हो जाएगा। नहीं तो मेरे पास एक सुझाव है कि हिंदुस्तान में जितनी बिरादरी हैं सभी को बुलाकर आरक्षण दे दें, कि लो भैय्या यह रही गुड़ की भेली, दो तुम्हारी, दो तुम्हारी और अब इसके लिए आपस में सिर फोड़ो, मरो, बस वोट हमें दे देना।

चौधरी साहब बोले– 'मियाँ मजाक मत करो! एक बात बताओ, क्या दुनियाँ के दूसरे देश तरक्की नहीं कर रहे हैं? हम क्या ज्यादा तरक्की कर रहे हैं? विदेशों में तो हमने इस 'आरक्षण रूपी जिन्न' का नाम नहीं सुना। जब हमारा देश आजाद हो गया सबके बराबर अधिकार हैं, तो फिर से जातियों की दीवारें क्यूँ खड़ी की जा रही हैं? ततैयों के छत्तों में पत्थर क्यों मारे जा रहे हैं? फिर ये काटेंगे तो हैं ही। अरे! देना ही है तो देश में इतने भूखे, नंगे हैं, उन्हें पहले रोटी, कपड़ा, मकान दो। चाहे वे किसी भी बिरादरी के हों, ये आरक्षण-वारक्षण तो बाद की बातें हैं। मूल समस्याएँ ज्यों की त्यों हैं, नई पैदा करते जा रहे हो।

□□□

प्यार को प्यार ही रहने दो...

प्यार एक अहसास है, रूह से महसूस करो
प्यार को प्यार ही रहने दो, कोई नाम न दो।

ये बातें अब पुरानी हो चुकी हैं, या कहें फास्टफूड के जमाने में अप्रासंगिक हो चली हैं। आज प्यार आत्मिक नहीं, दैहिक हो चला है। पहले प्यार का इजहार करने में ही प्रेमी को इतना वक्त लग जाता था कि प्रेमिका तब तक किसी और की हो जाती थी और प्रेमी महोदय अपना टूटा दिल लेकर 'देवदास' बने घूमते रहते थे। जमाने में कहीं प्रेमिका की रुसवाई न हो, इस अहसास से सारे रंजोगम सीने में दफन किए, पहलू में दिल को दबाए सारी उमर भटकते रहते थे।

मगर साहब, आज तो प्रेम के मायने ही बदल गए हैं। नजरें मिलती हैं, कुछ-कुछ होता है और फटाक से प्रेमीगण इलू-इलू गाने लगते हैं। आज प्यार एक अहसास नहीं जुनून हो चला है। आज प्रेम हुआ तो कल ही परिणाम चाहिए, फिर चाहे नतीजा...। समय की कमी है, अत: प्रेम भी 'फास्टफूट' में परिवर्तित करके परोसा जा रहा है।

एक नया शगूफा 'वैलन्टाइन डे' के नाम से आज के मॉडर्न प्रेमियों में काफी लोकप्रिय हो चला है। आज से कुछ वर्षों पहले कोई इस दिन को नहीं जानता था। मगर अब इस दिन का सदुपयोग प्रेमी अपने प्रेम का इजहार करने के लिए करने लगे हैं। अर्थात् यह दिन 'इश्को-मोहब्बत' जाहिर करने का दिन है। जबकि कहीं सुना था कि इश्क-मोहब्ब्त छुपाए नहीं छुपते। यह तो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। फिर उसके लिए किसी आडम्बर की आवश्यकता क्यों? यह दिवस चूँकि पश्चिमी देशों में मनाया जाता है और भारतीयों ने मानो पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करने के किए 'एग्रीमेंट' कर लिया है। सो प्रेम का क्षेत्र भी इससे अछूता कैसे रहता? यही कारण है कि पाश्चात्य देशों की तर्ज पर हम भी 'वैलन्टाइन डे' मनाने

लगे हैं। हर चीज की तरह आज प्रेम का भी व्यावसायीकरण हो रहा है। वैलन्टाइन डे के नाम से कार्ड इत्यादि बेचे जा रहे हैं। स्पेशल तौहफे बनाये जा रहे हैं। युवा वर्ग को एक मोटी रकम इन कामों के लिए अवश्य ही खर्च करनी है और इसमें कम्पनी का भी फायदा है। इसलिए इस दिवस का खूब प्रचार-प्रसार किया जाता है।

'वैलन्टाइन डे' एक महामारी की तरह महानगरों के साथ-साथ अब छोटे-छोटे शहरों/कस्बों आदि को भी अपनी चपेट में लेता जा रहा है। टी. वी. के विभिन्न चैनल इसे खूब बढ़ावा दे रहे हैं। यह बात अलग है कि अधिकांश प्रेमियों को यह न पता हो कि यह दिवस क्यों मनाया जाता है? और जिस संत वैलन्टाइन के नाम पर यह दिवस आज मनाया जा रहा है उनका उद्देश्य समाज को ही प्रेम का संदेश देना था न कि सिर्फ प्रेमी-प्रेमिका द्वारा ही प्रेम का इजहार करना।

प्रेम एक स्वाभाविक प्रक्रिया है और भारतीय संस्कृति तो सदा से प्रेम-पुजारी रही है, मगर गरिमापूर्ण प्रेम की। हीर-रांझा, शीरी-फरहाद, लैला-मजनू, जैसे अनेक उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं। जिन्होंने प्रेम के लिए अपने प्राणों की आहुति तक दे दी, प्यार के लिए अनेक कष्ट उठाए।

आज का युवा वर्ग भौतिकता की ओर भाग रहा है। अतः आत्मिक प्रेम की बातें उन्हें हास्यास्पद लगने लगी हैं। आज का युवा वर्ग (चंद अपवादों के अतिरिक्त) किसी भी प्रकार से अपने प्रेम को पाना चाहता है। इसके लिए वह कोई भी कदम उठा सकता है। आज वह स्वयं कोई त्याग नहीं करना चाहता है, दूसरों से इसकी उम्मीद रखता है।

सामाजिक मान-मर्यादा, पढ़ाई, कैरियर, माता-पिता सबको दरकिनार कर एक-दूसरे को पाना ही आज प्रेम का उद्देश्य बन गया है। मगर प्रेम तो त्याग माँगता है जो त्याग नहीं कर सकता है वह प्रेम क्या खाक करेगा?

जिंदगी महज एक रूमानी कल्पना तो नहीं है। जिंदगी वास्तविकता है, उसमें जिम्मेदारियाँ भी हैं, उसकी कुछ मर्यादाएँ, कुछ सीमाएँ भी हैं। मान लिया कि आपने सारे जहाँ से बैर लेकर प्रेमिका से विवाह भी कर लिया, मगर फिर आप सारी उम्र कल्पना में तो नहीं गुजार सकते। जीवन व्यतीत करने के लिए प्यार के साथ-साथ धन भी चाहिये, यह एक कड़ुवी सच्चाई है। यदि नींव कमजोर है, गुजारे के साधन नहीं हैं तो एक दिन प्रेम

की खुमारी का स्थान लड़ाई-झगड़े ले लेंगे।

आज शादी, तो कल बच्चे, फिर उनका भरण-पोषण करना होता है। इसलिए प्रेम के साथ-साथ जीवन को सँवारना भी आवश्यक होता है।

'वैलन्टाइन डे' के अवसर पर हमें युवा वर्ग से सिर्फ यही कहना है कि प्यार अवश्य करो, वह तुम्हारा अख्तियार है, मगर प्यार के साथ-साथ अपने व अपने साथी के कैरियर पर भी ध्यान दो, मान-मर्यादा का पालन करो। सच्चे प्रेमी बेहतर जीवन यापन के लिए एक दूसरे का इंतजार भी कर सकते हैं। प्रेम ज्वार-भाटा नहीं, संयम व त्याग का प्रतीक है। तबाही का नहीं, समृद्धि व प्रगति का प्रतीक है।

अफसाना ए चुनाव

मैडम दिल्ली में थीं (उस दिन चुनाव प्रचार के लिए बाहर नहीं गई थीं) हमें समाचार-पत्र के लिए उनका इंटरव्यू लेना था इसलिए फोन मिलाया, जवाब मिला- 'मैडम आजकल बहुत व्यस्त हैं, बात नहीं कर सकतीं।'

हमने कहा-'भाई! मैडम की व्यस्तता तो हमें भी पता है, लेकिन हमें उनका इंटरव्यू लेना है चुनाव के सिलसिले में।'

उधर से जवाब मिला- 'जनाब! मैडम चुनाव के कारण ही तो आजकल हिंदी सीख रही हैं। थोड़ी-बहुत तो सीख भी गई हैं और अब तो हिंदी में भाषण भी देने लगीं हैं। लेकिन बुरा हो इन विरोधियों का, बाल ठाकरे ने आरोप लगा दिया कि जो महिला जन-गण-मन नहीं गा सकतीं, वह इस देश की प्रधानमंत्री कैसे बन सकतीं हैं? इसलिए मैडम जन-गण-मन भी सीखने में लगीं हैं।'

हमने धीरे से पूछा- 'भैय्या! वे जन-गण-मन कौन-सी भाषा में सीख रही हैं?'

तो वे बोले- 'किसी से कहना मत, कोशिश तो हिंदी में कर रहीं हैं, मगर कामयाबी नहीं मिली तो इंगलिश या अन्य विदेशी भाषा में लिख कर काम चलाना पड़ेगा।'

हमने कहा- 'भाई जी! अगर कल को विरोधियों ने यह आरोप लगा दिया कि मैडम तो वंदे मातरम् भी नहीं जानतीं, फिर क्या मैडम संस्कृत भी सीखेंगी?'

कोई जवाब नहीं मिला, शायद उधर से फोन काट दिया गया।

हमने एक लंबी साँस लेकर फोन रख दिया और सोचा, हाय रे चुनाव! तुम क्यों बार-बार आ जाते हो? तुम्हारे कारण हमारे मासूम नेताओं को क्या-क्या पापड़ बेलने पड़ते हैं? किसी को हिंदी सीखनी पड़ती है,

किसी को भूलनी। आधा देश आज हिंदी भुलाने पर लगा है और मैडम बेचारी हिंदी सीख रही हैं।

चुनाव के कारण ही हमारे भोले-भाले नेताओं को जनता से कितने वायदे, कितनी घोषणाएँ करनी पड़ती हैं? कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं? ऐसो-आराम, सुख-चैन को छोड़कर धूल, धूप, गर्मी आदि झेलनी पड़ती है।

जनता का क्या है, वह तो पैदा ही बेचारी कष्ट उठाने के लिए होती है। इसलिए जनता को तो नेताओं के हित में अपील करनी चाहिए कि मान्यवर आप इतने कष्ट उठाकर हम तक आने की तकलीफ क्यों करते हैं? वोट देना तो हमारी मजबूरी है, किसी न किसी को देना ही है, अत: आपको ही दे देंगे, हमारा क्या, आप ही खुश रहिए, आबाद रहिए।

जीतना शबनम मौसी का

सज रही बन्नो मेरी माँ, सुनहरे गोटे में रूपहले गोटे में... गुनगुनाते हुए भाई जी बड़े रंगीन मूड में सरे राह चलते-चलते हमसे टकरा गये।

उनकी आँखों का सुरूर देख कर हमारा दिल घबराने लगा। हम कातर आवाज में मिमियाए– 'भाई जी! यह क्या? आप गुलफाम क्यों हुए जा रहे हो?

भाई जी कातिल अदा से बोले– 'क्या गुलफाम को भी अमेरिका ने पेटेंट करा लिया?' फिर मुस्कुराकर बोले– 'बेगानी शादी में अब्दुल्ला दिवाना।'

हमने खीझकर कहा– 'जरा खुलकर समझाइए ना, हम भी खुश हो लें, वी.पी.सिंह की तरह गम्भीरता की चादर ओढ़े-ओढ़े कुछ उकता गये हैं? कुछ आपके बहाने, कुछ फागुन के बहाने, हम भी बौराए बसंत का आनंदपान कर लें।'

लेकिन वे लगे ताली पीटने– 'बधाई हो बधाई, भाई जी के यार को बधाई।'

'मगर किस बात की बधाई? क्या आपको इस अधपकी उमर में पारो मिल गई, इस बार क्या होली उसी...।'

हमारी बात काटकर भाई जी जोर-जोर से हँसने लगे। 'यार तुम तो निरे बौडम हो, हम तो तुम्हें चतुर सुजान समझते थे। अब इस उमर में घरवाली ही हेमा मालन लागे है। पच्चीस-तीस सालों से वाके संग मनायी दीवाली, वाके संग ही खेली होली, सो अब...क्या उर्मिला, क्या ऐश्वर्या?'

'तो फिर आप इस तरह क्यों फुदक रहे हो? बधाई क्यों दे रहे हो' हमने किलस कर कहा।

भाई जी बोले– 'यार! मैं तो तुम्हें बधाई इसलिए दे रहा था कि मैंने अखबार में पढ़ा था कि मध्यप्रदेश की सोहागपुर सीट से देश की पहली किन्नर (हिजड़ा) विधायक चुनी गई।

'शायद उसी का असर आपके ऊपर आ गया तो जाकर उसी को

बधाई दीजिए, हमें क्यों दे रहे हो?' हमने तुनक कर कहा।

भाई जी शरारत से बोले– 'अब जब बधाइयाँ देने वाले, नेग लेने वाले विधानसभा और संसद में बैठने लगें, नेताओं के हमजुल्फ बनकर, तो बधाई देने-लेने क़ा काम तो आपको और हमें ही करना पड़ेगा न...' और भाई जी फिर शुरू हो गये।

कांग्रेस स्टाइल में लालू यादव को दिये जा रहे समर्थन के से स्टाइल में हमने बामुश्किल उन्हें रोका और कहा- भाई जी! बहुत हो गया, लग रहा है कि फागुन की मस्ती कुछ ज्यादा ही चढ़ गई आप पर, जरा सीरियस होकर सोचिए कि ऐसा क्यों हो रहा है? जनता नेताओं को छोड़कर हिजड़ों को चुनने पर क्यों मजबूर हो गयी? शायद इसलिए कि वह नेताओं को आजमा कर देख चुकी है और उनसे ऊब गयी है, उनकी वादा-खिलाफी से और अब इस कौम को मौका देना चाहती है क्योंकि इनके आगे-पीछे कोई नहीं है शायद ये ही ईमानदारी से काम कर सकें।

पर भाई जी मस्ती में बोले– 'बात तो तुम्हारी बिल्कुल सही है, मगर यार मेरी नजर में तो विधानसभा वालों को खाली जूते, चप्पल, कुर्सी, मेज फेंकने में कम मजा आ रहा था, वे यह काम तरन्नुम में गाजे-बाजे के साथ करना चाहते थे, सो उनके नीरस मौसम को सरस बनाने के लिए जनता ने शबनम मौसी एंड पार्टी को वहाँ भेज दिया।

हमने कहा– अब तो मध्य प्रदेश की तरह अन्य प्रदेशों के हिजड़े राजनीति में आने को बेकरार होंगे, फिर वे क्या करेंगे जो वहाँ मौज कर रहे हैं?

मगर वे अपनी ही धुन में बोले– 'चलो जनता का न सही, हिजड़ों का तो भला होगा, इनकी माँग तो मानी जाएगी, नहीं तो ये स्वयं ही मनवा लेंगे, इनसे तो पुलिस का सिपहिया भी घबराये है, नेताओं की तो बात ही क्या?

और जनाब फिर से तरन्नुम में गाने लगे 'खूब गुजरेगी जब मिल बैठेंगे दिवाने स़ारे...

हमने सोचा आज खैर नहीं, ये तो अपनी-अपनी कहेंगे, हमारी नहीं सुनेंगे, सो हम चुपचाप वहाँ से खिसकने की तैयारी करने लगे, जाते-जाते भी भाई जी की बेसुरी आवाज कानों में पड़ ही गयी–

कर चुके बेड़ा गर्क इस देश का हम साथियो,
अब तुम्हारे हवाले वतन साथियो...

□□□
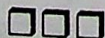
दलाल अंकल

बेटे के साथ दिल्ली जा रहा था। रास्ते में गाड़ी थाने के सामने से गुजरी, यकायक नज़र थाने की दीवार पर जा पड़ी। जहाँ एक बोर्ड पर बड़े-बड़े अक्षरों में साफ-साफ लिखा था– 'यहाँ दलालों का प्रवेश वर्जित है।'

पढ़कर सोचने लगा, लिखने से क्या किसी का प्रवेश वर्जित हो सकता है? या फिर यह चेतावनी भी वैसे ही लिख दी गई है जैसे सिगरेट की डिब्बी पर लिखा होता है– 'सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।' मगर पीने वाले कब किसी चेतावनी पर ध्यान देते हैं? पर लिखना तो पड़ता ही है। इसी विडम्बना पर हँसी आ गई। आवाज से पास में सोया बेटा चौंककर जाग गया और पूछने लगा– 'पापा आप हँस क्यों रहे हो?'

'कोई बात नहीं बेटा, बस यूँ ही हँसी आ गई थी।'

उसने पलटकर कहा– 'नहीं कुछ तो जरूर है, बताओ न, मैं भी हँसूगा', उसने जिद की।

क्यों भाई, तुम्हें हँसने के लिए बहाना क्यों चाहिए? तुम्हारी उम्र तो है ही हँसने-खेलने की' मैंने कहा।

'ये सब कहने-सुनने की बातें हैं। पापा! अब इतना भारी भरकम बैग, इत्ता क्लास वर्क, फिर ढेर सारा होमवर्क, इन सबमें हँसने-खेलने का टाइम ही कहाँ मिलता है? मजे तो आपके हैं, पढ़ना भी नहीं पड़ता है।'

उसके इस आरोप पर मैं चुप्पी लगा गया, क्योंकि उसकी बात में वजन था और मेरे पास उसकी समस्या का समाधान नहीं, जिनके पास समाधान है उनके पास देश के नौनिहालों के बारे में सोचने की फुरसत नहीं है।

कुछ क्षणों के लिए कार में शांति छा गई, पर कुछ ही देर में उसने फिर प्रश्न किया– 'पर पापा आप हँसे क्यों थे?'

खीझकर मैंने उस बोर्ड की तरफ इशारा कर दिया, तो वह गौर से पढ़ने लगा, 'यहाँ दलालों का प्रवेश वर्जित है।' फिर कहने लगा– 'पापा दलाल किसे कहते हैं।'

दलाल मतलब? मेरी समझ में नहीं आया कि उसे कैसे समझाऊँ, पर जान तो छुड़ानी थी, सो उसे समझाने की चेष्टा करने लगा– 'बेटा! मान लो किसी आदमी को आफिस में कोई काम है, वह काम वह स्वयं नहीं करा पा रहा है, ऐसे में उसे एक ऐसा व्यक्ति मिल जाता है जो उसी काम को आसानी से करा देता है, बस समझो यह व्यक्ति दलाल है।

'अच्छा तो पापा दलाल, गाइड अंकल जैसे होते हैं, जो हमें रास्ता दिखाते हैं।' उसने बाल सुलभ बुद्धि से कहा।

'हाँ बेटा! आपने ठीक समझा।' मैंने कहा।

थोड़ी देर बाद उसे न जाने क्या सूझा, कहने लगा– 'पापा! इन अंकल की जरूरत आपको भी है।'

मुझे? किसलिए? मैंने अचकचा कर कहा।

क्यों आप कल मम्मी से जब कह रहे थे, तो मैंने सुन लिया था उसने कहा।

'क्या सुन लिया था?'

'यही कि अगर आपको भी कोई मिल जाता तो आपके लेख, कहानियाँ भी छपने लगते, अभी तो वापिस आ जाते हैं।'

मैंने कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की। शायद आज मेरे चुप रहने की बारी थी, और उसकी बोलने की। कुछ देर बाद ही वह फिर कहने लगा– पापा! लगता है दलाल अंकल बेचारे पुलिस अंकल को परेशान करते हैं, तभी तो उन्हें लिखवाना पड़ा कि यहाँ दलाल अंकल नहीं आ सकते?

'हाँ बेटा, शायद ऐसा ही हुआ होगा।'

'पर पापा! मैंने सुना है कि पुलिस अंकल गंदे लोगों को पकड़ते हैं, उसने कहा।

'हाँ बेटा, आपने ठीक सुना।'

और पुलिस गंदे लोगों को ऐसे ही सजा देती है ना, जैसी टीचर आंटी क्लास में गंदे बच्चों को देती हैं। उसने बाल सुलभ कौतूहल से पूछा।

हाँ बेटा।

पर बच्चे की नादानी देखिये पूछ बैठा– 'तो फिर पापा यहाँ थाने में दलाल अंकल की जरूरत किसे है? चोर अंकल को या फिर पुलिस अंकल को? यदि चोर अंकल को है तो फिर पुलिस अंकल को यह क्यों लिखना पड़ा कि यहाँ दलाल का प्रवेश वर्जित है? उसके इस प्रश्न से घबराकर मैं बगलें झाँकने लगा, पर वह शायद मेरी मजबूरी समझ गया था, इसलिए चुपचाप सो गया।

□□□
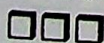
हम गाँधी जी के बन्दर हैं?

पश्चिमी उत्तर प्रदेश का सर्वाधिक पिछड़ा हुआ छोटा-सा जिला है- बिजनौर। ऐतिहासिक दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण लेकिन वर्तमान में बेहद उपेक्षित।

प्रकृति के करीब रखने के लिए, विद्युत विभाग की मेहरबानी से शाम होते ही यहाँ बिजली गुल हो जाती है, लेकिन हमें गर्व है कि लैम्प-लालटेन युग हमारी बदौलत आबाद है।

जरा-सी बरसात होते ही यहाँ नालियों का पानी नेताओं की तरह अपना पाला बदलकर सड़क पर आ जाता है, और स्वच्छ वस्त्रों को छींट-दार बन देता है।

अब जनाब, जब बरसात का मौसम है, तो मक्खी, मच्छर तो मन-मानी करेंगे ही। तो उनसे गुजारिश है कि वे अपनी कृपा-दृष्टि (डेंगू, मलेरिया फैलाकर) बनाए रखें, क्योंकि उन्हें रोकने की इच्छा और फुरसत किसके पास है?

बड़े गर्व की बात है कि हमारे जिले में प्रचुर मात्रा में क्रेशर एवं शुगर मिलें हैं, लेकिन मिल चलते ही छाई का साम्राज्य कुछ इस अदा से छा जाता है कि बेसाख्ता जुबान कह उठती है-

'जिधर देखते हैं, तू ही तू है,
तेरी-सी रंगत, तेरी-सी बू है।'

अब साहब! प्रशासन से इसकी रोकथाम के लिए मत कहना, खुद ही चौकस रहना। हाँ ये मोहतरमा जात-पात के चक्कर में न पड़कर, निष्पक्ष भाव से सभी का वरण कर सकती है। इनकी कृपा से अक्सर 'आँख के अंधे नाम नयनसुख' वाली कहावत फलीभूत होती रहती है और तब व्यक्ति 'बुद्धं शरणं गच्छामि' की जगह अनायास ही 'चिकित्सकं शरणं गच्छामि' कह उठता है।

सर्फ साबुन की कम्पनियों के सफेदी के दावे को ये साहिबा तब पलभर में झूठा साबित कर देती है, जब धुले-धुलाए सफेद कपड़े अगले ही पल काले नजर आने लगते हैं। दमे की बीमारी बढ़ाने में भी इनका सक्रिय योगदान है। अब इनकी तारीफ कहाँ तक करें...

तमाम सुविधाओं से वंचित इस शहर में सुविधा के नाम पर राजधानी लखनऊ आने-जाने के लिए 'सद्भावना' नामक ट्रेन है जो अक्सर रेल विभाग के सौजन्य से, कभी बंद हो जाती है, कभी चालू कर दी जाती है।

आप सोच रहे होंगे कि इतनी कठिनाइयों के बावजूद यहाँ कोई आवाज क्यों नहीं उठती है? तो उसका उत्तर यही है कि जनाब, यहाँ के बाशिंदे जरूरत से अधिक सरल एवं सीधे हैं, कष्ट उठाने के आदी हो चुके हैं। इनका संयम वाकई काबिले तारीफ है, एक तरह से ये ही सच्चे अर्थों में गाँधी जी के अनुयायी हैं, क्योंकि ये भी उनके बंदरों की तरह आँख, कान, मुँह सब बंद रखते हैं और हर समस्या को अनदेखा कर धैर्यवान बने रहते हैं।

हे! बिजनौर के प्रबुद्ध, शांत, संयमी नागरिको! उठो! जागो! देखो!! दुनियाँ इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुकी है, तुम कब तक 'कूप मंडूक' बनकर तुष्ट रहोगे?

चुनाव नजदीक आ रहे हैं, (जो नेताओं की कृपा से हमेशा ही नजदीक रहते हैं) अब बरसाती मेंढ़कों की तरह नेतागण भी तुम्हारे आस-पास फुदकने लगेंगे। तब आप उनसे पूछिये कि किस आधार पर आप हमसे वोट....
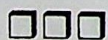
अफसाना ए हार

जाड़े की हाड़ कँपाने वाली ठंड में भैय्या जी रजाई से कुछ ऐसे लिपटे पड़े थे गोया रजाई न हो मंत्रीपद की कुरसी हो। कछुवे की तरह थोड़ी-सी गर्दन वहीं से बाहर निकालकर बोले- 'अरी भाग्यवान! जरा एक कप अदरक वाली गर्मा-गर्म चाय तो पिला दो, बंदा दुआ देगा।

पत्नी की रसोईघर में वर्तनों के साथ कुछ खींचतान चल रही थी। कभी बर्तनों के टकराने की आवाज तेज हो जाती तो कभी पत्नी के झल्लाने की। गोया रसोईघर न हो विधानसभा हो। सो ऐसे गर्म माहौल में गर्म चाय की उम्मीद कुछ कम ही थी, मगर आशा के विपरीत चाशनी में पगी एक आवाज आई- 'सुनो जी! चाय के साथ थोड़ी-सी पकौड़ी भी ले आऊँ क्या?'

सुनकर भैय्या जी को पसीना आ गया। उनकी छठी इन्द्रिय उन्हें चेतावनी देने लगी- 'बेटा किशोर! सावधान! आज तेरी खैर नहीं, बलि के बकरे को खिला-पिलाकर हलाल करने की तैयारी हो रही है। मामला गड़बड़ है, वरना चाय-पकौड़ी तो दूर की कौड़ी, कान पत्नी के प्रवचन सुनने को तैयार थे, मसलन- ठंड क्या केवल आप को ही लगती है, मैं क्या फौलाद की बनी हूँ। बस सुबह से शाम तक रसोई में खटते रहो, खुद बार-बार चाय की फरमाईश करते रहते हैं, मेरे तो करम फूट गये इत्यादि इत्यादि...

खैर! भैय्या जी आलस त्याग कर सावधान होकर आने वाली कयामत के इंतजार में दरवाजे की ओर टकटकी लगाकर बैठ गये।

पत्नी ने एक मधुर मुस्कान के साथ कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ में चाय-पकौड़ी की ट्रे थी। चाय थमाकर पकौड़ी की प्लेट आगे खिसका कर बोली- 'लीजिए ऐसी सर्दी में चाय के साथ पकौड़ी का लुत्फ लीजिए, और स्वयं भी मुस्कुरा कर उनके पास बैठ गई।

भैय्या जी की छठी इन्द्रिय उन्हें पुनः चेतावनी दे रही थी- 'बेटा किशोर! दूरी बनाकर रख दूरी, इस मुस्कान पर मत जाना, वरना फँस जायेगा। नारी को

शायद इसीलिए मोहिनी कहा गया है।

उधर पत्नी पूछ रही थी– 'अजी पकौड़ी कैसी बनी हैं? थोड़ी और लीजिए ना।

कबूतर की तरह जाल में फँसे किशोर महाशय बोले– 'अच्छी बनी हैं, तुम भी तो ले लो।'

आप कहते हो तो ले लेती हूँ, नजाकत के साथ पत्नी ने एक पकौड़ी उठा ली।

भैय्या जी चुप थे और इसी में उनकी भलाई थी। पत्नी पुनः बोली– 'अगले महीने की चौदह तारीख आपको याद तो होगी ना?'

वे अनजान बनकर बोले– 'क्यों कोई खास बात है क्या?' मुझे तो याद नहीं है।

पत्नी तुनककर बोली– 'इतना भी भूल गये, अगले महीने मेरा जन्मदिन है।'

यह सुनकर भैय्या जी के हाथ से चाय छलकते-छलकते बची, पर प्रकट में शांत भाव से बोले– 'वह तो हर साल ही होता है, इसमें कौन-सी नई बात हो गई?'

'खास बात तो है जी इस बार' पत्नी कुछ इतराकर बोली।

भैय्या जी की अंतरात्मा कराहने लगी– 'या मेरे मौला! खैर करना, इसीलिए रिश्वत दी जा रही है। बेटा किशोर, तू तो गया काम से। पर पत्नी से बोले– 'अच्छा ठीक है इस बार अपने जन्मदिन पर मुहल्ले वालों को बुला लेना, सहेलियों को बुला लेना।'

नहीं जी, मैं तो अपना जन्मदिन 'भव्य तरीके से मनाऊँगी' पत्नी ने बच्चों की तरह ठुनक कर कहा।

अब भैय्या जी की छठी इन्द्रिय ने उन्हें लताड़ा, अबे तू गधा है? अब तक नहीं समझा, पत्नी ने बहन जी के जन्मदिवस के विषय में पढ़ा होगा, बस उसी का भूत सवार हो गया, समझाने की गरज से बोले– 'भाग्यवान वे तो मुख्यमंत्री थीं, उनसे हमारा क्या मुकाबला। बड़े लोगों के जन्मदिन तो ऐसे ही मनाये जाते हैं।'

मगर पत्नी थी कि जिद पर अड़ गईं। होंगी मुख्यमंत्री, अपने लिए होंगी, पर मैं तो अपना जन्मदिन भव्य तरीके से ही मनाऊँगी, बड़ा-सा केक काटूँगी। हाँ, बहन जी की तरह तुम्हारे ऑफिस वालों को, सारे रिश्तेदारों को बुलाऊँगी, और उनसे 'गिफ्ट' भी लूँगी। हाँ! यह बताओ कि तुम्हारी ओर से मुझे क्या उपहार मिलेगा?'

भैय्या जी ने अपने नन्हें से बजट से बाहर जाकर कहा– 'ठीक है! मैं

तुम्हें तुम्हारी पसंद की एक साड़ी दे दूँगा।'

पर पत्नी भड़क उठीं– 'नहीं जी! मैं तो वैसा ही हीरों का हार लूँगी', जैसा बहन जी ने अपने जन्मदिन पर पहना था।

भैय्या जी को मानो ग्यारह सौ वोल्ट का करंट लग गया। तेज आवाज में बोले– 'पागल हो गयी क्या? कहाँ से लाऊँगा हीरों का हार, कभी शक्ल भी देखी है हीरों की?' हम मध्यम वर्ग वाले लोगों को इज्जत के साथ दो वक्त की रोटी मिल जाये, वही बहुत है। बड़ी आई बहन जी की तरह जन्मदिन मनाने वाली।

पत्नी मुँह बनाकर चुप हो गई। चाय अचानक कड़ुवी हो गई थी। फिजा में खामोशी छा गई।

भैय्या जी विचारमग्न हो गये। उन्हें लगा किसी मजबूर शायर ने ही लिखा होगा–

हालात इजाजत ही नहीं देते
वरना मुझसे भी कोई–
ताजमहल माँग रहा है।

आखिरकार भैय्या जी ने हार के फंदे से बचने के लिए अपनी छठी इन्द्रिय को तलब किया और उपाय सूझते ही खुशी से पत्नी से बोले– 'प्रिये, तुम्हारे जन्मदिन पर तुम्हें हीरों का हार जरूर मिलेगा, मगर उससे पहले जमानत का इंतजाम करने के लिए अपने भाई से कह दो।'

'क्यों किसकी जमानत करानी है।'

भैय्या जी ने तपाक से कहा– 'मेरी और किसकी? क्योंकि मैं बैंक में डकैती डालने जा रहा हूँ जिससे तुम्हें बहिन जी जैसा ही हार मिल सके बर्थ डे पर।

श्रीमती जी भौंचक्की-सी उनका मुँह ताकती रह गयीं।

शुभकामनाएँ जारी हैं!

'दीपावली शुभ हो!!' ये शब्द कर्णप्रिय तो जरूर लगते हैं, मगर साहब खाली जुबान हिलाने से दीपावली क्या खाक शुभ होती है? वास्तव में दीपावली का फंडा ही यह है कि जितना कीमती तोहफा, उतनी शुभ दीपावली। अब यह बात अलग है कि ईद मुबारक की तरह, दीपावली मुबारक भी आदमी की हैसियत के अनुसार होती है। लक्ष्मी मैय्या भी शायद धनवानों पर ही प्रसन्न होती है।

वैसे आम आदमी की क्या दिवाली? उसका तो दिवाली पर दिवाला ही निकल जाता है। कहीं से कुछ मिलता-मिलाता तो है नहीं, उल्टे खर्चा जरूर हो जाता है।

चलिये! आपको शहर की एक आम नागरिकों की कालोनी में दीपावली की सैर कराने चलते हैं–

सायंकाल का समय है, सारा मुहल्ला दीपों एवं बिजली की लड़ियों से जगमगा रहा है। पूजन हो चुका है, तेजी से मिठाइयों का आदान-प्रदान 'नो प्रोफिट-नो लॉस' के आधार पर चल रहा है। मुहल्लेवासियों में 'उपहारों' का आदान-प्रदान नहीं होता है, क्योंकि 'गिफ्ट' या उपहार वहाँ दिये जाते हैं, जहाँ कुछ काम पड़ता है। और मुहल्ले में तो एक-दूसरे की टाँग खींचने के अलावा कुछ काम नहीं होता है। अतः सूखी मिठाई ही इधर-उधर भाग रही है, अर्थात् इसकी मिठाई उसके घर, उसकी मिठाई इसके घर। अंदर का माल तकरीबन वही, बस बाहर से पैकिंग फर्क। यह सब देखकर मिसिज वर्मा का बेटा खिसियाकर बोला– 'मम्मा! आप लोग ऐसा क्यों करते हैं? शर्मा आंटी की मिठाई, वर्मा आंटी के घर, वर्मा आंटी की अग्रवाल आंटी के यहाँ, खामख्वाह आने-जाने में 'टाइम वेस्ट' होता है।'

माँ ने समझाया– 'चुप बेटा! ऐसा नहीं कहते हैं। शगुन है, इससे प्यार बढ़ता है। खैर! बेटा चुप हो गया। हालाँकि वह जानता था कि वर्मा

आंटी के पति की तरक्की पर, सबसे ज्यादा पेट में दर्द अग्रवाल आंटी के ही होता है। और शर्मा, वर्मा आंटी, किसके घर कौन आ रहा है? कौन जा रहा है? पर पैनी नजर रखती हैं। लेकिन बड़ों के प्यार के बीच वह बच्चा क्या बोलता? इसलिए चुपचाप मिठाई बाँटने चला गया।

इधर बड़ी देर से एक नन्हा बच्चा सामने वाली कोठी की ओर ताक रहा है। सारी कोठी दुल्हन की तरह सजी है। अंदर बच्चे नये कपड़ों में धूम-धाम से पटाखे छुड़ा रहे हैं। यह सब देखकर बड़ी हसरत के साथ बच्चा अपनी माँ से नये कपड़े, मिठाई-पकवान की जिद करने लगता है, तो माँ बहाना बनाती है। बेटा! पटाखों में पैसे बरबाद होते हैं। इसलिए मैंने तुझे नहीं दिलवाये।

तो बेटा बोला– 'अच्छा ठीक है, पर कपड़े तो दिला दो।'

बेचारी माँ फिर चुप हो जाती है। बच्चे के ज्यादा जिद करने पर वह झुंझला कर रोती हुई, उसे थप्पड़ मार बैठती है।

तो जैसे बच्चा सब कुछ समझ जाता है और माँ से लिपटकर कहता है– 'माँ तुम रोओ मत! मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। जो सामान कल तुम्हें कोठीवाली मेमसाहब देंगी, हम उसी से दिवाली मना लेंगे।

चलिये! अब आपको लिये चलते हैं, प्योर दीपावली के मंच पर। 'प्योर दीपावली' का अर्थ है कि यहाँ सब कुछ 'आंदे-आंदे' होता है। 'जांदे-जांदे' नहीं।

इस श्रेणी में दो वर्ग के आफिसर्स आते हैं। एक श्रेणी में वे आफिसर आते हैं जिनकी 'नीरस' पोस्टिंग होती है या प्रतीक्षारत होते हैं। दूसरी श्रेणी में वे आफिसर्स आते हैं जिनकी 'सरस' पोस्टिंग होती है।

'नीरस' पोस्टिंग वाले साहब के यहाँ सन्नाटा पसरा है। वृक्षों पर कौवे बोल रहे हैं। सर्वत्र एक अजब-सी शांति है। हाँ, कभी-कभी कोई भूला-भटका पथिक यह सोचकर आ जाता है कि 'सब दिन होत न एक समाना।' शायद भविष्य में काम पड़ जाये। चलो! छोटा-मोटा तोहफा दे ही दूँ।

उधर पड़ोसी के घर में रेडियो पर गाने की आवाज आ रही है– 'एक वो भी दीवाली थी, एक ये भी दीवाली है।'

'सरस' श्रेणी की तो मौज ही मौज है। भीड़ लगी है, साहब के यहाँ उपहार देने वालों की। किसी को प्रमोशन चाहिए, किसी को ट्रांसफर कराना

है, तो कोई साहब की नजरों में खुद को सर्वश्रेष्ठ साबित करना चाहता है। अब भला दीपावली से अच्छा अवसर क्या हो सकता है? मौका भी है दस्तूर भी।

'बड़े साहब दीपावली शुभ हो।' साहब सुनी-अनसुनी कर नजर उठाते हैं, तो सामने खींसे निपोरते श्रीवास्तव जी खड़े हैं।

पर शायद साहब ने देखा नहीं, साहब की नजरें 'गिफ्ट' के आकार से, सामने वाले को पहचानती हैं, और देनेवाला क्या कम खबीस है, जैसा साहब की कुर्सी का वजन, वैसा ही 'गिफ्ट' का वजन।

पर एक बात की तो तारीफ करनी होगी, श्रीवास्तव ने मन में सोचा, साहब का अर्दली सारे कायदे-कानून जानता है। अतिशीघ्र तोहफा लेकर ऐसे परे सरकाता है, जैसे कुछ लिया ही नहीं। और पुनः मुस्तैदी से ड्यूटी पर आकर खड़ा हो जाता है, पर प्रकट में बोले, साहब, बेटी की शादी आ रही है, यदि मेरा प्रमोशन...

ठीक है ठीक है, देख लेंगे, आपको भी दीपावली शुभ हो। (अर्थात् जाइये अब आप, अगला प्रतीक्षारत है।) और श्रीवास्तव जी को जगह खाली करनी पड़ती है। यहाँ दीपावली की शुभकानाएँ जारी हैं...
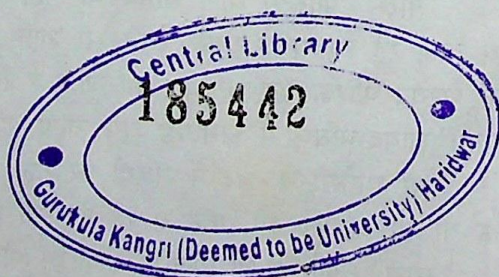
□□□
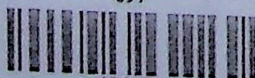
सुमन चौधरी

नामः सुमन चौधरी. **जन्मदाताः** श्रीमती शकुन्तला देवी, स्व.श्री धर्मपालसिंह तोमर. **जन्मतिथिः** 21 मई 1960 **शिक्षाः** एम.ए. (हिंदी). **कृतित्वः** नेता, टिकट और गिरगिट (व्यंग्य संग्रह) के अतिरिक्त देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन. **अन्यः** रोटरी क्लब की सक्रिय सदस्य एवं अनेक सामाजिक संस्थाओं से संबद्ध. **संप्रतिः** स्वतंत्र लेखन एवं सामाजिक कार्य. **संपर्कः** द्वाराः डा.अशोक चौधरी, 'पारिजात', शिवपुरी लेन, सिविल लाइन-2, बिजनौर (उ.प्र.) 246701. **दूरभाषः** 01342-262748

3/II हाइडिल कालोनी, बिजनौर, (उ.प्र.) 246701

Perfect Printers Meerut